बौद्धसिद्धान्त और वेदान्त

(बौद्ध और वैदिक दर्शनमें सैद्धान्तिक सामञ्जस्यकी विधाका
अनुदर्शक अद्भुत ग्रन्थ)



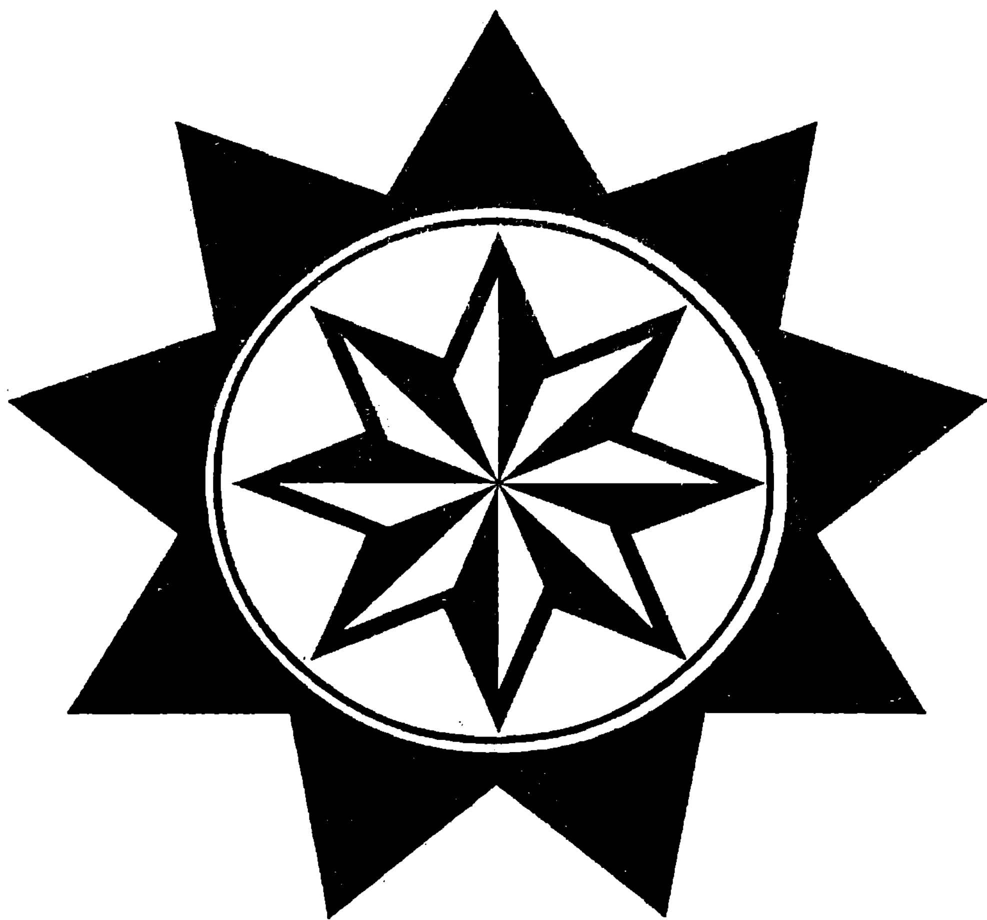
रचयिता

श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य

स्वामी निश्चलानन्दसरस्वती

बौद्धसिद्धान्त और वेदान्त

(बौद्ध और वैदिक दर्शनमें सैद्धान्तिक सामञ्जस्यकी विधाका अनुदर्शक अद्भुत ग्रन्थ)



रचयिता

श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य

स्वामी निश्चलानन्दसरस्वती

प्रकाशनप्रशस्ति

श्रीहरि:

श्रीगणेशाय नम:



"स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान" - श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीपीठका

८० वाँ पुष्प



बौद्धसिद्धान्त और वेदान्त





प्रथम संस्करण वि. स. २०६६, सन् २०१०,

१००० प्रतियाँ



सहयोगराशि

८०.०० (अस्सी रुपये)



स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान

श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य - श्रीगोवर्द्धनमठ

पुरी (ओडिशा),भारत

७५२००१

दूरभाष (०६७५२) २३१०९४, २३१७१६

गुरु - परम्परा



पूज्यश्री स्वामी कृष्णानन्दसरस्वती-महाभाग
के शिष्य



श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी ब्रह्मानन्दसरस्वतीजी
के शिष्य

बौद्धसिद्धान्त और वेदान्त
गुरु - परम्परा



पूज्यश्री स्वामी हरिहरानन्दसरस्वती '**करपात्री**जी' महाभाग
के शिष्य



पुरीपीठाधीश्वर - श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य स्वामी निश्चलानन्दसरस्वतीजी

पीठ - परम्परा



श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीके १४२वें श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य स्वामी मधुसूदनतीर्थजी



श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीके १४३वें श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य स्वामी भारतीकृष्णतीर्थजी

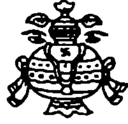
बौद्धसिद्धान्त और वेदान्त
पीठ - परम्परा



श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीके १४४वें श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य स्वामी निरञ्जनदेवतीर्थजी



श्रीगोवर्द्धनमठ-पुरीके १४५वें श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य स्वामी निश्चलानन्दसरस्वतीजी



श्रीहरि:

श्रीगणेशाय नम:



प्रकाशकीय



पूज्यपाद श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य महाभागके द्वारा विरचित "**बौद्धसिद्धान्त और वेदान्त** " नामक लघुकाय ग्रन्थ मनोरम है । निकट भविष्यमें उनके द्वारा विरचित "**बौद्धागमप्रस्थान और वैदिक सिद्धान्त**" नामक बृहद् ग्रन्थका प्रकाशन भी सुनिश्चित है।

पूज्यपादकी दृष्टिमें सत्यसहिष्णुताकी क्रमिक अभिव्यक्तिमें बौद्धादि दर्शनोंका उपयोग और विनियोग है। "**तत्त्वपक्षपातो हि स्वभावो धियाम्**"- के अनुसार सत् - तत्त्वका पक्षधर होना - बुद्धिका स्वभाव है। अत: दार्शनिक, वैज्ञानिक और व्यावहारिक धरातलपर सत्यका शास्त्रानुरूप युक्तियुक्त प्रतिपादन अपेक्षित तथा महत्त्वपूर्ण है।

पूज्यपादके शब्दोंमें सिद्धान्तके नामपर अनावश्यक सङ्घर्ष और सामंञ्जस्यके नामपर सिद्धान्तका परित्याग सर्वथा अनुचित है। परस्पर सद्भावपूर्ण सम्वादके द्वारा अनावश्यक दूरीका परित्याग आवश्यक है। जैन, बौद्ध और सिक्ख सनातनियोंके अभिन्न अङ्ग हैं। तीनोंके पूर्वज और मूल गुरु तथा प्रमुख आचार्य सनातन कुलमें समुत्पन्न हुए हैं। ऋषभश्री,

बौद्धसिद्धान्त और वेदान्त

प्रकाशकीय

श्रीमहावीर, श्रीबुद्ध , श्रीधर्मकीर्ति, श्रीनागार्जुन एवम् श्रीनानकसे गुरु गोविन्दसिंहपर्यन्त सनातनियोंकी भी आस्थाके केन्द्र रहे हैं।

इस सन्दर्भमें ग्रन्थकारका यह दृष्टिकोण ध्यान रखने योग्य है कि **किसी भी प्रशस्त दर्शनके मुख्य सिद्धान्तको उत्तर दर्शन लाञ्छित नहीं करता, अपितु अवान्तर प्रवाहको परिमार्जितकर मुख्यसिद्धान्तको विकसितमात्र करता है।** यथा चार्वाक दर्शनके मुख्य सिद्धान्त देह - बाह्य वस्तुओंके अनात्मत्वका समर्थन कर वेदान्तदर्शन चेतनाविशिष्ट देहके आत्मत्वपक्षका परिमार्जन करते हुए देह - विशिष्ट चेतनाकी सहिष्णुता समुत्पन्न करनेके अनन्तर केवल चिद्धातुके आत्मत्व और अद्वितीयत्वकी क्रमिक सत्यसहिष्णुता समुत्पन्न करता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ **"बौद्धसिद्धान्त और वेदान्त"** के अनुशीलनसे बौद्धप्रस्थान और वेदागमसिद्धान्तका सामञ्जस्यपूर्ण तुलनात्मक परिज्ञान सुनिश्चित है।

बौद्धदर्शनसे सम्बद्ध विविध ग्रन्थोंमें सन्निहित सिद्धान्तोंका सारगर्भित विज्ञान तथा औपनिषद सिद्धान्तके परिशीलनमें महत्त्वपूर्ण योगदान ग्रन्थानुशीलनसे सम्भव है।

शास्त्र-सद्गुरु-सर्वेश्वरकी अद्भुत करुणासे समुद्भूत मेधाशक्तिकी लोकोत्तर-चमत्कृति ग्रन्थमें सर्वत्र सन्निहित है ।

निवेदक

स्वामी निर्विकल्पानन्दसरस्वती

११.१०.२०६६

(२८.१२.२००९)

पुरी (ओडिशा), भारत





श्रीहरिः

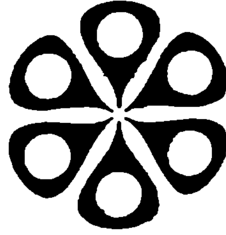
श्रीगणेशाय नमः

बौद्धसिद्धान्त और वेदान्त



विषयानुक्रमणी

विषयानुक्रमणी





श्रीहरि:

श्रीगणेशाय नम:

बौद्धसिद्धान्त और वेदान्त

१.मङ्गलाचरण

यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै
विवादसंवादभुवो भवन्ति।
कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहं
तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भूम्ने।।

(श्रीमद्भागवत ६.४.३१)

“जिनकी शक्तियाँ वादी, प्रतिवादियोंके विवाद और संवाद (ऐक्यमत) का विषय होती हैं और उन्हें बार - बार मोहमें डाल दिया करती हैं। जो अनन्त अप्राकृत कल्याण-गुणगणोंसे सम्पन्न और स्वयं अनन्त हैं, उन्हें नमस्कार है ।।”

कैवल्यश्रीस्वरूपेण राजमानं महोऽव्ययम्।
प्रतियोगिविनिर्मुक्तं श्रीरामपदमाश्रये।।

(रामरहस्योपनिषत्)

“जो कैवल्यश्री - स्वरूपसे विराजमान अद्वय, अव्यय ज्योति:स्वरूप श्रीरामतत्त्व है, उसका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ।।”





२. अपनत्व

वेद आस्तिक और नास्तिक दोनों प्रकारके दर्शनोंके उपजीव्य हैं। अतएव जिन्हें वेदोंका प्रामाण्य अमान्य है, परन्तु जो वैदिक सिद्धान्तोंके आंशिक पक्षधर हैं, वे एकदेशी वैदिक अवश्य हैं। कारण यह है कि जिन्हें देहातिरिक्त आत्माका अस्तित्व मान्य है, पूर्वजन्म और पुनर्जन्म एवम् परलोकके जो पक्षधर हैं, वेदैक समधिगम्य वेदबीज ओङ्कारके प्रति जो आस्थान्वित हैं; गोवंश, गङ्गादिमें जिनकी महत्त्वबुद्धि है तथा सनातनियोंकी निष्ठाके केन्द्र श्रीबुद्ध और ऋषभश्री, श्रीमहावीर आदिके प्रति जो निष्ठावान् हैं, जो बुद्धादिका अवतार पवित्र ब्राह्मण, क्षत्रियकुलमें मानते हैं तथा भारतवर्षको जो पवित्र आर्यभूमि अर्थात् पुण्यभूमि मानते हैं, जो स्वयं भी आर्य कहे जाते हैं; जो अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह - संज्ञक पञ्चशीलमें आस्थान्वित हैं, वे निःसन्देह वैदिकोंके सन्निकट होनेसे एकदेशी वैदिक अवश्य हैं।

''सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्।।''

(श्रीमद्भगवद्गीता १८.२०)

इस श्रीभगवद्वचनके अनुसार व्ययशील तथा विभक्त सर्वभूतोंमें अव्यय एवम् अविभक्त भावकी विद्यमानता सनातन तथ्य है। सात्त्विक ज्ञानके द्वारा इसका अनुदर्शन सम्भव है।

२. अपनत्व

कालकृत मायाकी क्षुब्धता सृष्टिकी विविधता तथा विचित्रतामें हेतु है। शम - दमादि - विहीन चित्तकी बहिर्मुखता ही विविधता और विचित्रताके दर्शन तथा विवादमें हेतु है। एक वस्तुका अन्य वस्तुमें अनुप्रवेश तत्त्वकी गणना और तत्त्वचिन्तनकी विधारूप प्रसङ्ख्यानमें मतभेदका कारण है। इस तथ्यके मर्मज्ञ मनीषियोंमें समन्वयकी विधा सन्निहित होनेके कारण उनकी दृष्टिमें कुछ भी अशोभन नहीं है। अत: 'जो तुम कहते हो, वह ठीक नहीं है, जो मैं कहता हूँ, वही यथार्थ है' - ऐसा विवाद रजोगुण तथा तमोगुणके विवश व्यक्तियोंमें ही परिलक्षित होता है, न कि तत्त्वज्ञ मनीषियोंमें। -

"परस्परानुप्रवेशात् तत्त्वानां पुरुषर्षभ।
पौर्वापर्यप्रसङ्ख्यानं यथा वक्तुर्विवक्षितम्।।"
(श्रीमद्भागवत ११.२२.७)

"इति नाना प्रसङ्ख्यानं तत्त्वानामृषिभि: कृतम्।
सर्वं न्याय्यं युक्तिमत्वाद् विदुषां किमशोभनम्।।"
(श्रीमद्भागवत ११.२२.२५)

"इस प्रकार ऋषियोंने जो विविध प्रकारसे तत्त्वोंकी गणना तथा गवेषणा की है, युक्तियुक्त होनेके कारण वह सब उचित ही है। रहस्यवेत्ता तत्त्वज्ञ मनीषियोंकी दृष्टिमें इस प्रकारकी विविधतामें एकता चरितार्थ होनेके कारण अशोभन क्या है ?"

वैषम्य जगत् का स्वभाव है, किन्तु इसके मूलमें साम्य सन्निहित है। भेदके मूलमें भेद, क्रियाके मूलमें क्रिया, गुणके मूलमें गुण, जन्मशीलके मूलमें जन्मशील, विशेषके मूलमें सविशेषका

प्रक्रम दार्शनिक धरातलपर अनवस्थित होनेसे अमान्य है। भेदकी सिद्धि भेदके सदुपयोगसे निर्भेदतक मनोगतिके लिये है। क्रियाकी सिद्धि क्रियाके सदुपयोगसे अक्रियके अधिगमके लिये है। गुणकी सिद्धि गुणोंके सदुपयोगसे अगुणके अधिगमके लिये है। जन्मकी सिद्धि जन्मके सदुपयोगसे अजके अधिगमके लिये है। विशेषकी सिद्धि विशेषके सदुपयोगसे अविशेषके अधिगमके लिये है। अभेदमें भेद, अक्रियमें क्रिया, अगुणमें गुण, अजमें जन्म, निर्विशेषमें सविशेष कल्पित तादात्म्य - सम्बन्धसे अवस्थित है। -

"जात्याभासं चलाभासं वस्त्वाभासं तथैव च।
अजाचलमवस्तुत्वं विज्ञानं शान्तमद्वयम्।।"
(माण्डूक्यकारिका ४.४५)

"आत्मतत्त्व स्वरूपसे अज (जन्मरहित) है। देवदत्तादिके जन्मसे चित्तत्त्व जन्म लेनेवाला - सा, गमनसें चल - सा, गौर होने और लम्बा होनेसे गौर और लम्बा - गुणवान् द्रव्य - सा परिलक्षित होता है। वस्तुतः आत्मतत्त्व स्वरूपसे अज (जन्मरहित), अचल, अवस्तु, अतएव शान्त और जात्यादिका अधिष्ठानभूत विज्ञानस्वरूप है।।"

"स्वतो वा परतो वाऽपि न किञ्चिद्वस्तु जायते।
सदसत्सदसद्वाऽपि न किञ्चिद्वस्तु जायते।।"
(माण्डूक्यकारिका ४.२२)

"जन्मकी प्रतीतिमात्र है, न कि सिद्धि। किसी भी वस्तुके वास्तव जन्मकी वस्तुतः असिद्धि ही है। स्वयंसे स्वयंकी समुत्पत्ति

घटसे उसी घटकी समुत्पत्तिके तुल्य असम्भव है। तद्वत् अन्यसे अन्यकी समुत्पत्ति घटसे पट और पटसे पटान्तरकी समुत्पत्तिके तुल्य असम्भव है। उभयत: अर्थात् दोसे किसी एककी समुत्पत्ति घट - पटसे घट या पटकी समुत्पत्तिके तुल्य असम्भव है। मृत्तिकासे घटकी उत्पत्ति दृष्टिगोचर होनेपर भी तत्त्वराज्यमें अप्रविष्ट है। कारण यह है कि मृत्तिकासे पृथक् घटसिद्धि असम्भव है। अतएव मृत्तिकाके अतिरिक्त घट नाममात्र है। अभिप्राय यह है कि कार्योत्पत्तिके पूर्व विद्यमान अतएव सत् की, अविद्यमान अतएव शशविषाणादिवत् असत् की तथा उभयात्मक सदसत् की समुत्पत्ति असङ्गत है। अत: किसी भी प्रकारसे किसी की उत्पत्ति असिद्ध है।।''

तथापि प्रातीतिक समुत्पत्तिकी सङ्गति तो आवश्यक है। -

''सतो हि मायया जन्म युज्यते न तु तत्त्वत:।
तत्त्वतो जायते यस्य जातं तस्य हि जायते।।''
(माण्डूक्यकारिका ३.२७)

''सद्वस्तुका जन्म मायासे ही चरितार्थ है, न कि वस्तुत:। जिसके मतमें सद्वस्तुका जन्म वास्तव होता है, उसके मतानुसार भी उत्पत्तिशीलका ही जन्म सिद्ध है। परमार्थ सत् अज, एकात्मतत्त्व अविक्रिय विज्ञानरूपसे ही विद्यमान है।।''

''असतो मायया जन्म तत्त्वतो नैव युज्यते।
वन्ध्यापुत्रो न तत्त्वेन न मायया वाऽपि जायते।।''
(माण्डूक्यकारिका ३.२८)

'असत्-वस्तुका जन्म मायासे या वस्तुत: असम्भव है। कारण

यह है कि वन्ध्यापुत्र न तत्त्वतः न मायासे ही उत्पन्न होता है ।।'

"अन्यथाभानहेतुत्वादियं मायेति कीर्तिता।।
आत्मतत्त्वतिरस्कारात्तम इत्युच्यते बुधैः।
विद्यानाश्यत्वतोऽविद्या मोहस्तत्कारणत्वतः।।
सद्वैलक्षण्यदृष्ट्येयमसदित्युदिता बुधैः।
कार्यनिष्पत्तिहेतुत्वात्कारणं प्रोच्यते बुधैः।।
कार्यवद्व्यक्तताभावादव्यक्तमिति गीयते।
एषा माहेश्वरी शक्तिर्न स्वतन्त्रा परात्मवत्।।"
(सूतसंहिता १ शिव. ८.१८ - २१)

"अन्यथा भानमें हेतु होनेसे माया माया कही गयी है। आत्मतत्त्वका तिरस्कार करनेसे अर्थात् आत्माको आच्छादित - सी करनेसे मनीषियोंके द्वारा यह तमस् कही गयी है। विद्याके द्वारा नष्ट होनेसे यह अविद्या कही गयी है। भ्रमित अर्थात् मोहित करनेके कारण मोह कही गयी है। सद्विलक्षण होनेसे मनीषियोंके द्वारा यह असत् कही गयी है। कार्यसदृश व्यक्त न होनेसे यह अव्यक्त कही जाती है। यह महेश्वरकी शक्ति महेश्वरतुल्य स्वतन्त्र नहीं है। यही कारण है कि यह शक्ति कही जाती है।।"

"न यत्पुरस्तादुत यन्न पश्चा -
न्मध्ये च तन्न व्यपदेशमात्रम्।
भूतं प्रसिद्धं च परेण यद् यत्
तदेव तत्स्यादिति मे मनीषा।।"
(श्रीमद्भागवत ११.२८.२१)

२. अपनत्व

"जो उत्पत्तिसे पहले नहीं था और प्रलयके पश्चात् भी नहीं रहेगा, ऐसा समझना चाहिये कि मध्यमें भी वह नहीं है, केवल नाममात्र ही है। यह सुनिश्चित सत्य है कि जो पदार्थ जिससे बनता और प्रकाशित होता है, अर्थात् सत्ता और चित्ता प्राप्त करता है, वही उसका वास्तविक स्वरूप होता है ।।"

"यस्तु यस्यादिरन्तश्च स वै मध्यं च तस्य सन्।
विकारो व्यवहारार्थो यथा तैजसपार्थिवाः।।"
(श्रीमद्भागवत ११.२४,१७)

"जिसके आदि और अन्तमें जो है, वही मध्यमें भी है तथा वही सत्य है। जैसे कि कटक, मुकुट, कुण्डलादि सुवर्णकार्योंके आदि और अन्तमें सुवर्ण विद्यमान है, अतः मध्यमें भी इन सुवर्ण कार्योंके रूपमें सुवर्ण ही विलसित और परिलक्षित है तथा सत्य है एवम् घटादि मृत्कार्योंके आदि और अन्तमें मृत्तिका विद्यमान है , अतः मध्यवर्ती घटादि विकारोंके रूपमें भी मृत्तिका ही विलसित और उद्भासित होनेसे सत्य है। कार्यात्मक विकार केवल व्यवहारसिद्धिमें प्रयुक्त तथा विनियुक्त है। यह नियम कहीं भी व्यभिचरित नहीं है, सर्वत्र चरितार्थ है।।"

"यदुपादाय पूर्वस्तु भावो विकुरुतेऽपरम्।
आदिरन्तो यदा यस्य तत् सत्यमभिधीयते।।"
(श्रीमद्भागवत ११.२४.१८)

"निस्सन्देह उपादानकारणसे विनिर्मित उपादेयकी अपेक्षा उपादान ही स्थिर सत्य होता है। तद्वत् उत्तरवर्ती उपादानकी अपेक्षा पूर्ववर्ती उपादान स्थिर सत्य होता है। इस प्रकार परोवरीय क्रमसे

सर्वाधिष्ठानस्वरूप सर्वोपादान परम सत्य ही एकमात्र कूटस्थ सत्य सिद्ध होता है। उत्तरवर्ती उपादानसहित उपादेयोंमें सत्यत्व उपचरित ही होता है। कारण यह है कि सत्यका नानात्व असम्भव है। घटादिकी अपेक्षा मृत्तिका, मृत्तिकाकी अपेक्षा जल, जलकी अपेक्षा तेज, तेजकी अपेक्षा वायु, वायुकी अपेक्षा आकाश, आकाशकी अपेक्षा अहम्, अहम् की अपेक्षा महत्, महत् की अपेक्षा अव्यक्त और अव्यक्तकी अपेक्षा चिद्धातु आत्मतत्त्व ही सत्य और एकमात्र सत्य सिद्ध है। कारण यह है कि अचित्पदार्थ विकार हो या विकारोपादान उसकी सर्वथा निर्विकारता असिद्ध है। अतएव निर्विकार चिद्धातुकी सत्यता ही सर्वतोभावेन अव्यभिचरित और अकुण्ठित है। इसप्रकार जब जो जिस कार्यके आदि और अन्तमें विद्यमान रहता है, उसीकी मध्यमें भी अव्यभिचरित विद्यमानता सिद्ध होनेसे वही सत्य सिद्ध है।। ''

''आदावन्ते च मध्ये च सृज्यात्सृज्यं यदन्वियात्।
पुनस्तत्प्रतिसङ्क्रामे यच्छिष्येत तदेव सत्।।
श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम्।
प्रमाणेष्वनवस्थानाद् विकल्पात् स विरज्यते।। ''

(श्रीमद्भागवत ११.१९.१६,१७)

''जो तत्त्व सृष्टिके प्रारम्भ और अन्तमें कारणरूपसे स्थित रहता है, वही मध्यमें भी प्रतिष्ठित रहता है तथा वही प्रतीयमान कार्यसे प्रतीयमान कार्यान्तरमें अनुगत भी होता है। पुनः उन कार्योंका प्रलय या बाध (मिथ्यात्वनिश्चय) होनेपर उसके साक्षी और

अधिष्ठानरूपसे जो शेष रहता है, वही सत् है।।''

''प्रमाणोंमें श्रुति, प्रत्यक्ष, ऐतिह्य (महापुरुषोंमें प्रसिद्धि) और अनुमान - ये चार प्रधान हैं। इनकी कसौटीपर कसनेपर दृश्यप्रपञ्च अस्थिर, नश्वर और विकारी होनेके कारण सत्य सिद्ध नहीं होता। अत: विवेकी पुरुष इस शब्दमात्र विविध कल्पनारूप प्रपञ्चसे विरक्त हो जाता है।।''

''यद् यस्य जन्म निधनं स्थितिरीक्षणं च
तद् वै तदेव वसुकालवदष्टितर्वो:।।''
(भागवत ७.९.३१)

'' जिससे जिसकी उत्पत्ति, स्थिति, संहृति और स्फूर्ति - सिद्ध है, अर्थात् सत्ता और उपयोगिता चरितार्थ है, वही उसका वास्तवरूप अर्थात् स्वरूप मान्य है, जैसे कि वृक्षकी बीजभावापन्न भूमिरूपता और भूमिकी गन्धतन्मात्ररूपता सिद्ध है।।''

''नादिर्न मध्यं नैवान्तस्तस्य देवस्य विद्यते।।
अनादित्वादमध्यत्वादनन्तत्वाच्च सोऽव्यय:।''
(महाभारत - शान्तिपर्व२०६.१२, १२.१/२)

''उस देवका न आदि, न मध्य, न अन्त ही है। वह अनादि होनेके कारण, अमध्य होनेके कारण और अनन्त होनेके कारण अव्यय है।।''

''असत्वादात्मनोऽन्येषां भावानां तत्कृता भिदा।
गतयो हेतवश्चास्य मृषा स्वप्नदृशो यथा।।''
(श्रीमद्भागवत ११.१३.३१)

''आत्मासे अन्य देहादि प्रतीयमान नामरूपात्मक प्रपञ्चका

कुछ भी अस्तित्व नहीं है। अतः उनके कारण होनेवाले वर्णाश्रमादि भेद, स्वर्गादि फल और उनके कारणभूत कर्म - ये सबके - सब आत्माके लिये वैसे ही मिथ्या हैं ; जैसे स्वप्नदर्शी पुरुष द्वारा देखे हुए सबके - सब पदार्थ।।''

''आद्यन्तयोर्यदसतोऽस्ति तदेव मध्ये।।''

(श्रीमद्भागवत ११,१९.७)

''आदि और अन्तमें असत् मध्यमें भी असत् ही है।।''

''यत्सामान्यविशेषाभ्यामुपलभ्येत स भ्रमः।
अन्योन्यापाश्रयात् सर्वमाद्यन्तवदवस्तु यत्।।''

(श्रीमद्भागवत १२.४.२८)

''कारण तन्तुतुल्य सामान्य तथा कार्य वस्त्रतुल्य विशेष होता है। जो आदि तथा अन्त-युक्त परस्पर-सापेक्ष होनेसे कारण तथा कार्यरूपसे विद्यमान है, वह भ्रम है, उसका अवस्तु होना सुनिश्चित है।।''

''सर्वाधिष्ठानमद्वन्द्वं परं ब्रह्म सनातनम्।
सच्चिदानन्दरूपं तदवाङ्मनसगोचरम्।।
तस्मिन्सुविदिते सर्वं विज्ञातं स्यादिदं शुक।
तदात्मकत्वात्सर्वस्य तस्माद्भिन्नं न हि क्वचित्।।
सत्यवद्भाति तत्सर्वं रज्जुसर्पवदास्थितम्।
तदेतदक्षरं सत्यं तद्विज्ञाय विमुच्यते।।''

(रुद्रहृदयोपनिषत् २६,२७,३४)

''हे शुक ! सच्चिदानन्दस्वरूप सनातन पर ब्रह्म निर्द्वन्द्व तथा मन, वाणीसे अतीत सर्वाधिष्ठानस्वरूप है। अतएव उसके सुविज्ञानसे

यह सब विज्ञात होता है। यह सब तद्रूप ही है। उस अपने अधिष्ठानसे भिन्न स्वतन्त्र सत्य नहीं है। तथापि अधिष्ठानस्वरूप सत् - संज्ञक ब्रह्मकी विद्यमानतासे रज्जुमें सर्पवत् सत्यवत् भासित होता है। उस इस अनश्वर सत्यको जानकर मुमुक्षु मुक्त होता है।।"

"सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्" (छान्दोग्योपनिषत् ६.२.१) **"तदैक्षत" (छान्दोग्योपनिषत् ६.२.३), "स ईक्षाञ्चक्रे" (प्रश्नोपनिषत् ६.३), "(एकोऽहं) बहु स्याम्" (छान्दोग्योपनिषत् ६.२.३)** आदि श्रुतियोंमें **"सः"**, **"एकः"** से अव्याकृतका, एकरूपताके निश्चयसे समष्टि बुद्धिरूप महत्‌का और अहम् -पदसे अहन्तत्त्वका अवबोध प्राप्त है। **"तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः" (तैत्तिरीयोपनिषत् २.१)** के अनुसार परमात्मस्वरूप आत्मासे अचित् आकाशकी उत्पत्तिका उल्लेख प्राप्त है। आत्मा और आकाशके मध्य चित् - अचित् उभयात्मक वस्तुका समुल्लेख **"बहु स्याम्"** श्रुतिमें सन्निहित है। अव्यक्तकी उच्छूनावस्था महत् और आत्माकी व्यावहारिक कला अहम् का तथा बहुभवनसामर्थ्यसम्पन्न उपादानात्मक ब्रह्माधिष्ठित अव्याकृतका परिज्ञान इस श्रुतिके अनुशीलनसे सिद्ध है। महेश्वरभावापन्न महामायाकी सर्गोन्मुखता परमात्मासे अव्यक्तकी समुत्पत्ति है। निद्राभङ्गके अनन्तर और अहम् की अभिव्यक्तिके पूर्व मध्यदशाका अनुशीलन करनेपर महत्तत्त्वका आकलन सम्भव है।

उक्त श्रुतियोंके अनुसार परमात्मकर्तृक ईक्षण आकाशादिकी समुत्पत्तिमें हेतु है। ईक्षण सङ्कल्पात्मक होता है। सङ्कल्प, विकल्प,

निश्चय और गर्वरूप प्रत्ययमें शब्दका अनुगम अनिवार्य है। अभिप्राय यह है कि शब्द या शब्दजन्यसंस्कारका आलम्बन लिए बिना सङ्कल्पादिकी सिद्धि असम्भव है। - **"न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते"** **(वाक्यपदीयम् १.१२३)** - के अनुसार व्यवहारसाधक ऐसा कोई बोध नहीं, जिसमें शब्दकी अनुगति न हो। ऐसी स्थितिमें परमात्माके आकाशसर्जनविषयक सङ्कल्पमें अनुगत शब्द आकाशकी उत्पत्तिसे पूर्व परमात्मा और आकाशके मध्यवर्ती तत्त्वका द्योतक है। उक्तरीतिसे वस्तुविज्ञानरूप प्रत्ययमें शब्दानुगम वैयाकरणोंको मान्य है। अतएव अनादि सर्वेश्वरके सर्वविषयक बोधमें अनुगत अभङ्ग आनुपूर्वी - युक्त शब्दराशिरूप वेदकी अनादिता चरितार्थ है।

उक्त श्रुतियोंमें **"आसीत्"** से काल और **"एकम्"** और **"बहु"** से सङ्ख्याका अन्तर्निहित निर्देश सम्प्राप्त है। वस्तुविज्ञानरूप प्रत्ययमें कालानुगम ज्योतिर्विदोंको मान्य है।- **"न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः कालानुगमादृते"** कारण यह है कि वस्तुनिरूपणमें कहीं साक्षात् तथा कहीं अर्थात् कालका चित्रण अनिवार्य है। वस्तुके सादित्व या अनादित्वके प्रतिपादनमें कालका साक्षात् उल्लेख सर्वमान्य है। वस्तुमात्रकी सादिता या अनादिताके कारण वस्तुमात्रके चित्रणमें कालानुगम अर्थात् सिद्ध है। वस्तुविज्ञानरूप प्रत्ययमें सङ्ख्यानुगम गणितज्ञोंको मान्य है। - "लोकमें ऐसा कोई प्रत्यय नहीं है, जिसमें सङ्ख्याका अनुवेध न हो। " कारण यह है कि वस्तुनिरूपणमें कहीं साक्षात् तथा कहीं परम्परासे सङ्ख्याका अनुगम सिद्ध है। वैयाकरणोंके सिद्धान्तमें प्रणवात्मक ब्रह्म ही निखिल विश्वका उपादान है। -

२. अपनत्व

"अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रकिया जगतो यत:।।"
(वाक्यपदीयम् १.१)

ध्यान रहे, कोई भी वस्तु किसी - न - किसी काल, देश और सङ्ख्यामें ही अस्तित्वलाभ करती है। उसका प्रतिपादन किसी - न - किसी देश और कालमें ही होता है। वस्तुविज्ञानका विषय पृथिव्यादि वस्तु ही नहीं , अपितु देश, काल और सङ्ख्या भी मान्य है। वस्तुत: देश, काल और सङ्ख्या भी वस्तु ही मान्य हैं। ऐसी स्थितिमें देश, काल और सङ्ख्यासहित पवन, पाषाणादिके विज्ञानमें शब्दानुगम अनिवार्य है। कारण यह है कि पाटल, पनस, पृथिव्यादि तथा गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द और सुखादिके विज्ञानमें भी अभिव्यञ्जक शब्दका अनुबेध अवश्य है।

यद्यपि शब्दविषयक ज्ञानमें भी शब्दानुगमकी सिद्धि होती है, तथापि शब्दकी भास्य संज्ञा है और ज्ञानकी भासक संज्ञा है। अभिप्राय यह है कि **शब्द** गन्ध , रस, रूप, स्पर्शादिका ही नहीं, अपितु शब्द और शब्दातीतका भी प्रतिपादक होता है। अतएव शब्दब्रह्म परब्रह्मका सन्निकट प्रतिपादक है। -

"नैतन्मनो विशति वागुत चक्षुरात्मा
प्राणेन्द्रियाणि च यथानलमर्चिष: स्वा:।
शब्दोऽपि बोधकनिषेधतयाऽऽत्ममूल -
मर्थोक्तमाह यदृते न निषेधसिद्धि:।।"
(श्रीमद्भागवत ११.३.३६)

२. अपनत्व

''जैसे दाह और प्रकाशरूप अग्निकी चिनगारियोंका उद्गमस्थान अग्नि है, अतएव चिनगारियाँ अपने उपादानभूत अग्निको दग्ध करने और प्रकाशित करनेमें अक्षम हैं, वैसे ही भगवद्रूप इस आत्मामें आत्मविलासरूप मन, बुद्धि, प्राण और वाक्, नेत्रादि इन्द्रियोंकी गति नहीं है; अभिप्राय यह है कि ये इन्हें अपना विषय बनानेमें समर्थ नहीं है। माना कि शब्द आत्मबोधका सर्वाधिक सन्निकट साधन है, परन्तु वह भी शब्दप्रवृत्तिके अहेतुभूत एक, निर्गुण, निष्क्रिय, असङ्ग, निरुपम - निरधिष्ठान आत्मामें साक्षात् चरितार्थ नहीं हो सकता। '**सत्यम् ब्रह्म, ज्ञानम् ब्रह्म**' (**तैत्तिरीयोपनिषत् २.१**), '**आनन्दो ब्रह्म**' (**तैत्तिरीयोपनिषत् ३.६**)आदि विधिमुखसे प्रवृत्त श्रुतियाँ ''**सोऽयं देवदत्तः**'' - '' **वही यह देवदत्त**'', '**विषं भुङ्क्ष्व**' - '**विष खा**' - (**शत्रुघरमें भोजन न कर, अपने घर ही भोजन कर**) की शैलीमें निषेधगर्भित विधिमुखसे तथा ''**नेति - नेति**''(**बृहदारण्यक २.३.६**), ''**अनन्तम्**'' **तैत्तिरीय २.१**) आदि निषेधमुखसे प्रवृत्त श्रुतियाँ ''**न त्वं अमनुष्यः**''- ''**तुम अमनुष्य नहीं हो अर्थात् मनुष्य अवश्य हो**'' की शैलीमें विधिगर्भित निषेधमुखसे प्रवृत्त होकर अशेष विशेषातीत स्वप्रकाश साक्षादपरोक्ष, निर्बीज, निषेधावधि तत्त्वको परम तात्पर्यरूपसे अवशिष्ट रखती हैं।।''

केवल निषेधमुखसे निरूपण निरधिष्ठान विकल्पका, निरन्वय नाशका और असन्मूलक उत्पत्तिका एवम् असाक्षिक बाधका प्रतिपादक होनेके कारण दार्शनिक, वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक धरातलपर अनर्गल सिद्ध होता है। केवल विधिमुखसे प्रतिपादन

सविशेष परिणामी पदार्थका साधक होता है। अत: विधिगर्भित निषेध तथा निषेधगर्भित विधिमुखसे वस्तुका श्रवण - मननानुकूल युक्तियुक्त निरीक्षण और प्रयोगानुरूप परिशीलनरूप परीक्षण कर्तव्य है। तदनन्तर तथ्यानुकूल कथनरूप निरूपण एवम् प्रयोगानुरूप कथनरूप प्रतिपादन आर्षसिद्धान्तका ख्यापक होता है।

वेदान्तवेद्य परमार्थ तत्त्व त्वत्ता, अहन्ता, आत्मता, परता, भावरूपता, अभावरूपता, भावाभावरूपता - रहित, अनामय, अनाभास, अनामक, अकारण, शान्त, निरालम्ब, शाश्वत तथा शिव है। -

"त्वत्ताहन्तात्मता यत्र परता नास्ति काचन ।
न क्वचिद्भावकलना न भावाभावगोचरा।।
सर्वं शान्तं निरालम्बं व्योमस्थं शाश्वतं शिवम् ।
अनामयमनाभासमनामकमकारणम् ।।"
(महोपनिषत् ५.४४,४५)

अत: आत्मस्वरूप विज्ञानको मेघप्रभव - विद्युत् - तुल्य समुत्पन्न क्षणिक न मानकर अनुत्पन्न नित्य मानना चाहिये। उसे अनुत्पन्न अतीन्द्रिय परमाणु तथा प्रकृतितुल्य अनादि नित्य किन्तु सूर्यसदृश स्वप्रकाश अतएव बौद्धप्रत्ययका अविषय मानना चाहिये। **'विज्ञातारमरे केन विजानीयात्' (बृहदारण्यकोपनिषत् २.४.१४, ४.५.५)** यह वचन स्वप्रकाशस्थलमें चरितार्थ है।

जो स्वयं भी स्वयंका अविषय हो, स्वेतर सबका अवभासक हो, अवभासनक्रियाका कर्तृत्व भी जिसमें **'सविता प्रकाशते'** के तुल्य उपचरित हो अर्थात् अवेद्य होता हुआ अपरोक्ष, ऐसा - वैसासे

विलक्षण हो, उसे स्वप्रकाश कहना चाहिये।

ध्यान रहे, परस्पर - सापेक्ष वस्तु भी परवर्तीके अपलापसे निरपेक्ष सिद्ध है। यथा, आदि और अन्तमें अघट संज्ञा प्राप्त घटरूप कार्यके अपलापसे मिट्टीकी कारणसंज्ञा असिद्ध, किन्तु सत्ता सिद्ध है -**"वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्"** **(छान्दोग्योपनिषत् ६.१.४)**

तद्वत् अधिभूत (विषय) रूप, अध्यात्म (करण) नेत्र और अधिदैव (सुर) सूर्य - परस्पर सापेक्ष होनेपर भी तेज सत्य है। रूपादि तैजस तेज - सापेक्ष हैं, तेज रूपादि सापेक्ष नहीं है। वह रूपादिका अधिष्ठानात्मक मौलिकरूप है। अत: तेजके उल्लास रूप, नेत्र तथा सूर्य (/दीप)की परस्परसापेक्षता होनेपर भी तेजकी निरपेक्षता ही सिद्ध है। तद्वत् तेजके उल्लास नेत्रगोलक, नेत्रेन्द्रिय तथा सूर्यकी परस्परसापेक्षता होनेपर भी तेज:स्वरूप द्रष्टा आत्माकी निरपेक्षता ही सिद्ध है। यथा -

"दीपश्चक्षुश्च रूपं च ज्योतिषो न पृथग्भवेत्।
एवं धी: खानि मात्राश्च न स्युरन्यतमादृते।।"
(श्रीमद्भागवत १२.४.२४)

"योऽध्यात्मिकोऽयं पुरुष: सोऽसावेवाधिदैविक:।
यस्तत्रोभयविच्छेद: पुरुषो ह्याधिभौतिक:।।
एकमेकतराभावे यदा नोपलभामहे।
त्रितयं तत्र यो वेद स आत्मा स्वाश्रयाश्रय:।।"
(श्रीमद्भागवत २.१०.८,९)

२. अपनत्व

ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयरूपा त्रिपुटीमें तीनोंकी परस्पर - सापेक्षता चरितार्थ है, तथापि मध्यवर्ती ज्ञानकी त्रिपुटीसे अतीत तत्त्वरूपता सिद्ध है। तद्वत् द्रष्टा, दर्शन, दृश्यरूपा त्रिपुटीमें तीनोंकी परस्पर - सापेक्षता चरितार्थ है, तथापि मध्यवर्ती दर्शनकी त्रिपुटीसे अतीत तत्त्वरूपता सिद्ध है। -

''द्रष्टृदर्शनदृश्यानां मध्ये यद्दर्शनं स्मृतम्।
नातः परतरं किञ्चिन्निश्चयोऽस्त्यपरो मुने।।"

(महोपनिषत् २.६९)

''हे मुने ! द्रष्टा, दृश्य और दर्शनकी त्रिपुटीमें वह केवल दर्शनस्वरूप माना जाता है। इस सम्बन्धमें इसके अतिरिक्त कोई अन्य निश्चय नहीं किया जा सकता।।"

त्रिपुटीसे अतीत परमार्थदर्शन ही द्रष्टा और दृश्यके मध्यवर्ती दर्शनरूपसे उद्भासित है।

''सम्बन्धे द्रष्टृदृश्यानां मध्ये दृष्टिर्हि यद्वपुः।
द्रष्टृदर्शनदृश्यादिवर्जितं तदिदं पदम्।।"

(महोपनिषत् ५.४८)

''द्रष्टा तथा दृश्यका सम्बन्ध होनेपर मध्यमें दृष्टिका जो स्वरूप होता है, वह द्रष्टा - दृश्य - दर्शनरूपा त्रिपुटीविरहित यह वास्तव पद है। अभिप्राय यह है कि द्रष्टारूप आश्रय और दृश्यरूप विषय - निरपेक्ष मध्यवर्ती दर्शनरूपा दृष्टि वस्तुतः त्रिपुटीसे अतीत परम तत्त्व है।। "

''द्रष्टृदर्शनदृश्यानि त्यक्त्वा वासनया सह।

दर्शनप्रथमाभासमात्मानं केवलं भज।।"
(मैत्रेय्युपनिषत् २.२९),
"द्रष्टृदर्शनदृश्यानि त्यक्त्वा वासनया सह।
दर्शनप्रत्ययाभासमात्मानं समुपास्महे।।"
(महोपनिषत् ६.१८)

"द्वैतविषयक वासनासहित द्रष्टा, दर्शन, दृश्यरूपा त्रिपुटीका त्याग कर देनेपर अर्थात् त्रिपुटीसे उपराम हो जानेपर केवल त्रिपुटी - निरपेक्ष अवशिष्ट ज्ञानात्मक पूर्वसिद्ध दर्शनसंज्ञक आत्मतत्त्वकी हम सम्यक् उपासना करते हैं।।"

" त्रिपुट्यां निरस्तायां निस्तरङ्गसमुद्रवन्निवातस्थित - दीपवदचलसम्पूर्णभावाभावविहीनकैवल्यज्योतिर्भवति।" (मण्डलब्राह्मणोपनिषत् २.३)

"त्रिपुटीके निरस्त हो जानेपर निस्तरङ्ग समुद्रवत्, निवातस्थित दीपवत् अचल सम्पूर्ण भावाभावविहीन आत्मज्योतिरूपसे ही स्थितप्रज्ञ शेष रहता है।।"

अत: ज्ञानमयी दृष्टिका सम्पादनकर जगत् को ब्रह्ममय देखना चाहिये। अथवा द्रष्टा, दर्शन और दृश्यके विरामस्थलमें ही दृष्टि सन्निहित करे। ऐसी परम उदारतासे सम्पन्न दृष्टिका ही सदा समादर करे। -

"दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद् ब्रह्ममयं जगत् ।", "द्रष्टृदर्शनदृश्यानां विरामो यत्र वा भवेत्। दृष्टिस्तत्रैव कर्त्तव्या न नासाग्रावलोकिनी।।" (तेजोबिन्दूपनिषत् १.२९,३०)

ध्यानरहे, अनात्मवस्तुओंके अनुरूप आत्ममान्यताका त्यागकर आत्मानुरूप आत्मस्थितिका नाम मुक्ति है। -

"स्वरूपावस्थिति: मुक्ति:" (महोपनिषत् ५.२), "मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थिति:" (श्रीमद्भागवत २.१० .६)

जड (अचित्, दृश्य), अजड (चेतन, दर्शन) और द्रष्टामें जो अनुभवस्वरूप अनामय (निरुपद्रव) परमार्थतत्त्व है, वह त्रिपुटीसारसर्वस्व ब्रह्म है। उसे साक्षादपरोक्ष प्रत्यगात्मा तथा अन्तरात्मा समझकर उसमें मनोनिवेश प्रपञ्चविस्मरणरूप सुषुप्तिकल्प समाधि है। दृश्यसम्वलित आत्ममान्यता बन्धन और दृश्यसंसर्गविविक्त आत्मानुरूप आत्मस्थिति मुक्ति है। दृश्यके दर्शनमें प्रयुक्त और विनियुक्त दर्शन यद्यपि बन्ध है, तथापि द्रष्टाके दर्शनमें प्रयुक्त और विनियुक्त दर्शन दृश्यसंसर्गविहीन अद्वय बोधात्मक ही सिद्ध है। -

**"जडाजडदृशोर्मध्ये यत्तत्त्वं पारमार्थिकम्।
अनुभूतिमयं तस्मात्सारं ब्रह्मेति कथ्यते।।
दृश्यसम्वलितो बन्धस्तन्मुक्तौ मुक्तिरुच्यते।
द्रष्टृदर्शनसम्बन्धे यानुभूतिरनामया।।
तामवष्टभ्य तिष्ठ त्वं सौषुप्तिं भजते स्थितिम्।
सैव तुर्यत्वमाप्नोति तस्यां दृष्टिं स्थिरां कुरु।।"
(अन्नपूर्णोपनिषत् २. १७ - १९)**

जिस प्रकार घटादि मृत्तिकाकी स्निग्धतानामकी शक्तिके योगसे

अभिव्यक्ति है और उसका अभिव्यञ्जक - संस्थान है, उसी प्रकार जगत् ब्रह्मकी मायानामक शक्तिके द्वारसे अभिव्यक्ति है और उसका अभिव्यञ्जक - संस्थान है। जिस प्रकार घटादिकी अभिव्यञ्जकता उसकी ज्ञापकता है, उसी प्रकार जगत् की अभिव्यञ्जकता उसकी ज्ञापकता है। जगत् ज्ञापक, लक्षक, बोधक है और ब्रह्म ज्ञाप्य, लक्ष्य तथा बोध्य है।

ध्यान रहे, सविशेषकी निर्विशेष भावापत्ति सविशेषकी स्वतन्त्र सत्ताका अख्यापक है तथा उसके वास्तव स्वरूप निर्विशेषताका ख्यापक है। निर्विशेषकी सविशेषभावापत्ति निर्विशेषके विकारित्व या परिणामित्वका अख्यापक है तथा विवर्तताका पोषक है।

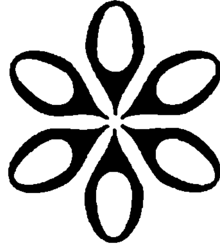
इस प्रकार, वस्तुविज्ञानरूप प्रत्ययमें शब्दानुगमके तुल्य शब्दमें स्वप्रकाश विज्ञानरूप प्रत्ययका अनुवेध भी सिद्ध है। पानीमें पृथ्वी और पृथ्वीमें पानीके तुल्य यह तथ्य हृदयङ्गम करने योग्य है। अभिप्राय यह है कि जलाभिव्यञ्जक पृथ्वीके तुल्य ज्ञानाभिव्यञ्जक शब्द है और पृथिवीके उपादान जलके तुल्य शब्दोपादान स्वप्रकाश ज्ञान है। शब्द ज्ञानाभिव्यक्तिमें निमित्त तथा ज्ञान शब्दाभिव्यक्तिमें उपादान कारण है। अतएव "शास्त्रयोनित्वात्" (ब्रह्मसूत्र १.१.३) का अर्थ दो वर्णकमें चरितार्थ है। पहले वर्णकके अनुसार, स्वप्रकाश सर्वेश्वर वेदैक समधिगम्य है। दूसरे वर्णकके अनुसार स्वप्रकाश सर्वेश्वरसे वेद समुद्भूत हैं। अभिप्राय यह है कि शब्दोपादानस्वरूप ज्ञान शब्दाभिव्यञ्जक होता हुआ शब्दाभिव्यङ्ग्य है।

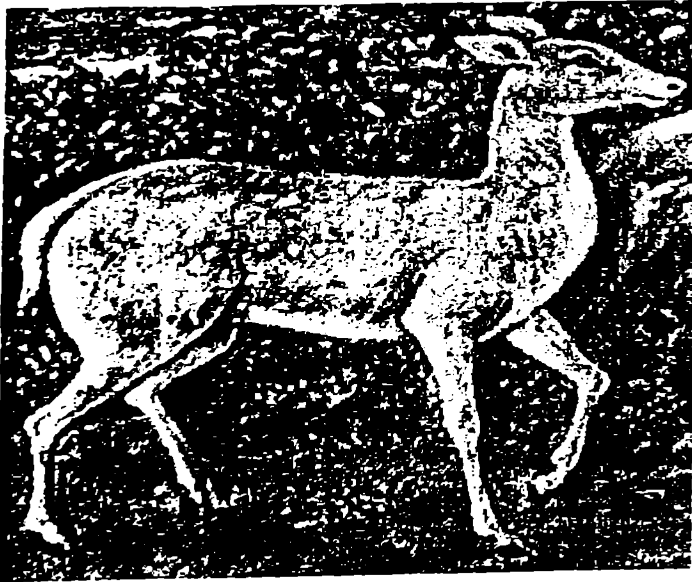
ध्यान रहे, वैयाकरण जिसे शब्दब्रह्म कहते हैं, साङ्ख्यवादी उसे **प्रकृति** कहते हैं और **"मायां तु प्रकृतिं विद्यात्"** **(श्वेताश्वतरोपनिषत् ४.१०), "ब्रह्मशक्तिरेव प्रकृतिः"** **(निरालम्बोपनिषत्), "अविद्या मूलप्रकृतिर्माया लोहितशुक्लकृष्णा" (शाण्डिल्योपनिषत् २.१)** के अनुसार वेदान्ती उसे **माया** तथा **अविद्या** कहते हैं। वे विवक्षावशात् उसे ब्रह्मशक्तिस्वरूपा प्रकृति तथा प्रणवात्मिका शब्दब्रह्मात्मिका स्फोटरूपा सीतादि नामोंसे भी अभिहित करते हैं। -

"श्रीरामसान्निध्यवशाज्जगदानन्ददायिनी ।
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम्।।
सा सीता भवति ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता।
(/सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता।)
प्रणवत्वात्प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः।।"
(श्रीरामोत्तरतापिनीयोपनिषत् ३,४, सीतोपनिषत् २)

ओङ्कारगत अ, उ और म् तथा प्रकृतिसम्भव सत्त्व, रजस् तथा तमस्के साम्यकी दृष्टिसे प्रणवकी प्रकृतिसंज्ञा है। अभिप्राय यह है कि प्रकृतिप्रभव त्रिगुणसम्भव प्रपञ्च और नादप्रभव प्रणवसम्भव प्रपञ्चकी दृष्टिसे दोनोंमें प्रस्थानभेदसे भेद होनेपर भी अभेद है। ब्रह्म, माया, काल, सङ्ख्यादिका प्रतिपादन शब्दाधीन और ज्ञानार्थ होनेके कारण भी बोधमें शब्दका समवेत रहना स्वाभाविक है। **"शब्दमायावृतो यावत् तावत्तिष्ठति पुष्करे। भिन्ने तमसि चैकत्वमेकमेवानुपश्यति।।" (ब्रह्मविन्दूपनिषत् १५)** -"जीव

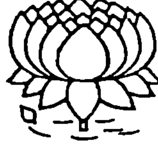
जबतक शब्दरूपा मायासे समावृत है, तबतक हृदयकमलमें निबद्ध परिच्छिन्नरूपसे विद्यमान रहता है। परन्तु अज्ञानसम्भव परिच्छिन्न मान्यताके विनष्ट होते ही आत्माकी ब्रह्मरूपता और सर्वात्मरूपताका ही अनुदर्शन करता है।" इस श्रुतिके अनुशीलनसे शब्दकी मायारूपता सिद्ध है।





श्रीहरि:

श्रीगणेशाय नम:



३.बौद्धागम - परिशीलन

"**बौद्धसिद्धान्त और वेदान्त**" - यह बौद्धसिद्धान्त तथा औपनिषद दर्शनका सारगर्भित संक्षिप्त चित्रण है। वेदोंका शिरोभाग होनेसे उपनिषदोंको **वेदान्त** कहते हैं। उपनिषदर्थको अभिव्यक्त करनेवाले पुराण और महाभारतादिके प्रकरण और प्रस्थानविशेष भी वेदान्त कहे जाते हैं। श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासमहाभागविरचित ब्रह्मसूत्रोंमें उपनिषदर्थकी संक्षिप्त और सारगर्भित मीमांसा सुलभ होनेके कारण उसे वेदान्तदर्शन कहते हैं। त्रिकालगर्भित और त्रिकालातीत समग्र वस्तुओंका प्रतिपादक वेदोंको आस्तिक, नास्तिक सब दर्शनोंका उपजीव्य मानना सर्वथा उचित है। सत्यसहिष्णुताकी क्रमिक अभिव्यक्तिकी भावनासे परोवरीयक्रमसे वेदोंमें विविध मतोंका प्रसङ्गानुसार चित्रण और प्रतिपादन है। बौद्धागममें वेदबीज प्रणवका प्रतिपादन तथा सम्यग्दृष्टि और समाधि आदिका साधनसोपानके रूपमें उल्लेख एवम् विज्ञान और शून्यका आत्मरूपसे सन्निवेश वेदवेदान्तोंके प्रभावसे बौद्धागमको अछूता सिद्ध नहीं होने देता। वेदविज्ञान और वैदिक वाङ्मयका बौद्धिक धरातलपर विवर्तित, परिवर्तित, प्रकारान्तरपरिष्कृत एवम् प्रच्छन्नस्वरूप बौद्ध धर्म

एवम् दर्शन अर्थात् बौद्धागमसिद्धान्त है। वैदिक पुराणों और बौद्धिक महायान - सूत्रों तथा साहित्योंमें माहात्म्य तथा स्तोत्रादिकी दृष्टिसे अद्भुत साम्य है। अथर्ववेदादिकी शैलीमें 'धारणी' की संरचना वेदानुकृतिकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है। जप तथा पाठमें प्रयुक्त एवम् अपूर्व - फलोत्पादनमें विनियुक्त गीतिसिद्धिमें हेतुभूत 'हाउ' आदि वैदिक स्तोभ - सदृश धारणीके अन्तमें वाच्यशून्य (अर्थहीन) कतिपय अक्षरोंका सन्निवेश वेदविधाका स्मारक तथा पोषक है। महाप्रतिसार, महासहस्रप्रमर्दिनी, महामयूरी, महामन्त्रानुसारिणी - आदि धारणियोंकी संरचना महामारी, अनावृष्टि, अतिवृष्टि - आदि विविध अनर्थोंकी निवृत्ति तथा धन, जन, मानादि मनोरथोंकी सिद्धिकी भावनासे की गयी है।

हीनयान निर्वाणप्रद सन्यासप्रधान निवृत्तिमार्गसे सम्बद्ध था। कालान्तरमें महायानके प्रवर्तक नागार्जुनके गुरु ब्राह्मण श्रीराहुलभद्रने श्रीकृष्ण तथा श्रीगणेशके उपदेश क्रमश: श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीगणेशगीतासे प्रेरित तथा प्रभावित होकर भक्तिगर्भित कर्मयोग तथा सर्वभूतहितमें संलग्नतादिको आदर्श मानकर बुद्धके अवतारादिकी गाथाको महायानमें सन्निहित किया। बौद्ध तारानाथने तिब्बती भाषामें बौद्धधर्मके इतिहासके सन्दर्भमें इस तथ्यको अङ्कित किया है।

महायानके शाखाविभेद मन्त्रयान तथा वज्रयान बौद्धप्रस्थानके तन्त्रशास्त्र हैं। इनका प्रमुख प्रतिपाद्य शून्याद्वैत तथा विज्ञानाद्वैत है। निर्वाणप्रद शून्य और विज्ञान वज्रोपम अनश्वर मान्य हैं। क्रिया, चर्या, योग, मण्डल, यन्त्र, मन्त्रादिके प्रतिपादक तन्त्रग्रन्थ वैदिक तथा पौराणिक युग्म - तत्त्वके विधायक और प्रतिपादक हैं।

व्यष्टि - निग्रह तथा शोधनकी प्रधानतासे '**हीनयान**' नामक बौद्धप्रस्थान है। समष्टि- समुद्धारकी भावनासे सर्वहितप्रद करुणा, स्नेह, सहानुभूति, क्षमा, दान, शील, वीर्य, ध्यान, स्वतः - परतः - उभयतः अनुत्पन्न सर्वभावोंसे असङ्गता- सहित ज्ञान - विज्ञानकी परिपूर्णतारूपा **प्रज्ञापारमितासे** सम्पन्नताकी प्रधानतासे '**महायान**' नामक बौद्धप्रस्थान है।

सर्वजीवोद्धारकी भावनासे बोधिसंज्ञक सम्यग् ज्ञानमें मनः स्थिति **बोधिचित्त** है। सर्वसत्त्वव्यसनहरणरसिकशेखरता निर्वाणोपलब्धिका सुगम सरस सत्यार्थ है। -

''भवदु:खशतानि तर्तुकामैरपि
सत्त्वव्यसनानि हर्तुकामैः।
बहुसौख्यशतानि भोक्तुकामैर्न
विमोच्यं हि सदैव बोधिचित्तम्।।"
(बोधिचर्यावतार १.८)

''सैकड़ों भव दुःखों (सर्व - संसार - सन्तापों) को तरनेकी तथा सैकड़ों विविध सौख्यसेवनकी कामनावालों अर्थात् आत्मोद्धार और आनन्दोपलब्धिकी भावनावालोंके द्वारा भी सर्वप्राणियोंके सर्वविध क्लेश - निवारणकी भावनासे कभी भी बोधिचित्तका परित्याग उचित नहीं है।।"

मलिन वासनाके क्षयसे निर्वाणोपलब्धि **हीनयानका सिद्धान्त** है। वासनाशोधनसे शुद्ध वासना तथा देहशुद्धिका सम्पादन, देहशुद्धिसे लोककल्याणका सम्पादन, पुनः शुद्ध वासनाके परित्यागसे पूर्णत्वलाभरूप

बुद्धत्वकी सिद्धि - महायानका सिद्धान्त है।

दुःखक्षय तथा बुद्धत्वकी सिद्धिके अनन्तर लोक - सन्तापनिवारणार्थ उद्यमशीलता **सोपधिशेषनिर्वाणरूप** जीवन्मुक्ति है। देहपातरूप **स्कन्धनिवृत्तिके** अनन्तर **अनुपधिनिर्वाणरूप** विदेहमुक्ति है।

मलिन और शुद्धवासनोच्छेदके अनन्तर क्लेशात्मक अज्ञानकी आत्यन्तिकी निवृत्ति बोधिसत्त्वकी बुद्धपदारूढतारूपा अद्वयस्थिति है। यह धर्म - नैरात्म्यावस्थिति ज्ञातृ - ज्ञेय - समरसता है।

मलिन तथा शुद्ध वासनाके क्रमिक क्षयसे सर्वविध पाशक्षय एवम् बुद्धत्व परियोजना बौद्धदीक्षाकी पूर्णता है।

प्रारब्धातिरिक्त प्रतिबन्धनिरास और प्रारब्धपर्यन्त प्रतिबन्धनिरास शक्तिपातरूपा दीक्षाके द्विविध प्रक्रम हैं। वैन्दवसंज्ञक सिद्धदेह - सम्प्राप्त योगी दिव्यदेहसे योगवैभवके प्रकाश एवम् लोककल्याणमें निरत रहता है। गोत्रसंस्कार और व्यष्टिभावके भी दाहक भावके समुदयसे सर्वेश्वरकल्प लीलाविग्रह - सम्प्राप्त शिवभावापन्न शाक्तशरीर - सम्प्राप्त योगी सर्वरूप सर्वभावापन्न सर्वातीत तथा पूर्ण असङ्ग होता है। युक्ताहार - विहार तथा सकल व्यवहारसे सम्प्राप्त स्वस्थदेह, अप्रत्याहतगति- परकायप्रवेशादिक्षम वैन्दव और शिवभावापन्न शाक्त - संज्ञक विविध शरीरसे अतीत अभिमत आत्मरूपसे ही अवशिष्ट सिद्ध, सिद्धेश्वर तथा स्वरूपको नमस्कार।

बोधिचित्तसम्पन्नताके लिये वन्दना, पूजना, शरणगमन, पापदेशना (पश्चात्तापपूर्वक अपने पापोंका प्रकटीकरण), पुण्यानुमोदन (सर्व

प्राणियोंके पुण्योंका प्रसन्नतापूर्वक अनुमोदन), बुद्धाध्येषणा (बुद्ध बननेकी प्रार्थना तथा सर्व दिशाओंमें अवस्थित बुद्धोंसे सर्वहितकी प्रार्थना), याचना (निर्वाणाधिकारसम्प्राप्त कृतकृत्य जिनोंसे सर्वकल्याणमें निरत रहनेकी भावनासे परिनिर्वाणमें प्रवेश न करनेकी प्रार्थना) और बोधिपरिणामना (प्रस्तुतक्रमसे अनुत्तरपूजाके फलस्वरूप सञ्चित पुण्योंके प्रभावसे सर्वप्राणियोंके दुःखशमनमें बोधप्रदायक निमित्त बननेकी भावना तथा प्रार्थना) - संज्ञक अष्टाङ्गका अनुपालन अपेक्षित है। अकिञ्चन होनेपर भी मानसी आराधनाके द्वारा आराध्यदेवकी परिचर्या विहित है। स्थावर - जङ्गम प्राणियोंमें परम्पराप्राप्त निसर्गसिद्ध आहार बनकर सबकी तृप्तिमें तथा निर्वाणप्रदायक बोध बनकर सबकी मुक्तिमें हेतु सिद्ध होनेकी भावना निर्वाणसिद्धिका सुगम सरस शीघ्र फलप्रद मार्ग (उपाय) है। स्वयंको भोग , योग और बोध - सर्वरूपोंमें प्रस्तुतकर और उसके फलस्वरूप प्राप्त परिनिर्वाणाधिकारका भी परित्याग **दानपरिमिता** है। हिंसा, मिथ्याभाषण, चौर्य, परिग्रह, व्यभिचारादि गर्हित क्रियाकलापों और मनोभावोंसे विरतिचित्तता **शीलपारमिता** है। परिनिष्ठित शीलकी अभिव्यक्ति उसके विपरीत परिस्थितिमें ही सम्भव है। यथा अहिंसाकी प्रतिष्ठाकी अभिव्यक्ति हिंसकोंके व्याकोपसे, ब्रह्मचर्यकी प्रतिष्ठाकी अभिव्यक्ति कामिनीकटाक्षविलाससे, अपरिग्रहकी प्रतिष्ठाकी अभिव्यक्ति परिग्रहके अनुकूल परिस्थितिसे ही सम्भव है, अतः **अन्तर्निधिकी अभिव्यक्तिका अभिव्यञ्जक संस्थान बाह्य विपरीत परिस्थिति है,** ऐसा समझकर अकलुषित मनःस्थिति **क्षान्तिपारमिता** है। सर्व अभ्युदय-निःश्रेयसप्रद कुशल कर्मोंके सम्पादनमें उत्साहकी पूर्णता **वीर्यपरिमिता**

है। चित्तकी एकाग्रता **ध्यानपरिमिता** है। जन्म - कर्मकी अहेतुता अर्थात् अजातभावकी परिपुष्टताके फलस्वरूप बुद्धत्वप्रदायक बोधकी पूर्णता **प्रज्ञापारमिता** है। "**योऽनुपलम्भ: सर्वधर्माणां सा प्रज्ञापारमितेत्युच्यते**" **(अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता)** - "सर्व धर्म (वस्तु) के अनुपलम्भका नाम प्रज्ञापारमिता है। अद्वयशून्यात्मभावरूपता प्रज्ञापारमिता है।"

"न स्वतो नापि परतो न द्वाभ्यां नाप्यहेतुत:।
उत्पन्ना जातु विद्यन्ते भावा: क्वचन केचन।।"
(श्रीनागार्जुन - मध्यमकमूल १.१)

"स्वभावसे उत्पत्तिकी और उत्पत्तिसे स्वभावकी सिद्धिके कारण भावोंकी स्वत: समुत्पत्ति असम्भव है। चनासे मटर या सबसे सबकी उत्पत्ति असिद्ध होनेके कारण भावोंकी परत: समुत्पत्ति भी असम्भव है। भावोंकी स्वत: या परत: समुत्पत्ति असङ्गत होनेसे भावोंकी उभयत: उत्पत्ति भी नहीं हो सकती । देशकालादिके उच्छेदके कारण भावोंकी अहेतुत: उत्पत्ति भी नहीं होती।।"

"यदन्यसन्निधानेन दृष्टं न तत्स्वभावत:।
प्रतिबिम्बे समे तस्मिन् कृत्रिमे सत्यता कथम्।।"
(बोधिचर्या ९. १४५)

"जो अन्यके सन्निधानसे दृष्टिगोचर है, वह निज स्वभावसे सत्य नहीं है। वह तो उसके बिना है ही नहीं, अत: प्रतीतिदशामें भी प्रतिबिम्बकल्प ही है। भला, उस कृत्रिममें सत्यता सम्भव ही कहाँ है?"

"भविष्यति कथं नाम विभव: सम्भवं विना।
विनैव जन्ममरणं विभवो नोद्भवं विना।।

सम्भवेनैव विभवः कथं सह भविष्यति।
न जन्ममरणं चैव तुल्यकालं हि विद्यते।।"
(माध्यमिककारिका २१.२,३)

"सम्भव (उत्पत्ति) के बिना विभव (विनाश) कैसे हो सकता है? सम्भवके बिना विभव सर्वथा असम्भव ही है। अतः बिना जन्म और मरणके ही दृश्यका समुल्लास सिद्ध है।। "

"समुत्पत्तिके पश्चात् ही समुच्छेद सम्भव है, अतः दोनोंकी सहस्थिति कैसे सम्भव है? जैसे कि जन्म तथा मरण तुल्यकालमें परिलक्षित नहीं होते।।"

वस्तुतः न किसीका समुत्पाद है, न समुच्छेद ही।

उक्त छह पारमिता चित्तजा हैं। भावसंशुद्धिके द्योतक हैं। चित्तकी रक्षा विहित तथा प्रतिषिद्धकी यथायोग **स्मृतिसे** तथा काय, वाक्, मनके प्रत्यवेक्षणरूप **संप्रजन्यसे** सम्भव है। तदर्थ प्राप्त विवेकका समादरसंज्ञक अप्रमत्तता अपेक्षित है। तदर्थ चित्तकी शान्तिसंज्ञक **शमथके** अनुपम माहात्म्यका परिज्ञान अपेक्षित है। शमथके प्रभावसे **समाधि** तथा समाधिके प्रभावसे **यथाभूत (यथार्थ) दर्शन** सम्भव है। यथार्थदर्शनसे सर्व सत्त्वों (प्राणियों) के प्रति **महाकरुणाका** सञ्चार होता है।

इस प्रकार **शील, चित्त** और **प्रज्ञाके** योगसे **सम्यक् - सम्बोधिकी** समुपलब्धि सम्भव है। आर्यरत्नमेघके अनुसार "**चित्तपूर्वङ्गमाश्च सर्वधर्माः। चित्ते परिज्ञाते सर्वधर्माः परिज्ञाता भवन्ति " (शिक्षासमुच्चय पृष्ठ १२१)** -"सब धर्मोंकी सिद्धि चित्तसे सम्भव है। चित्तका ज्ञान होनेपर सर्व धर्म परिज्ञात होते हैं।"

आर्यधर्मसङ्गीतिके अनुसार **"चित्ताधीनो धर्मो धर्माधीना बोधिः" (शिक्षासमुच्चय पृष्ठ १२२)** - "चित्तके अधीन धर्म है और धर्मके अधीन बोधि है।"

आर्यगणडव्यूहसूत्रके अनुसार **"स्वचित्ताधिष्ठानं सर्वबोधिसत्त्वचर्या स्वचित्ताधिष्ठानं सर्वसत्त्वपरिपाकविनयः" (शिक्षासमुच्चय पृष्ठ १२२)** - "बोधिसत्त्वचर्या अपने चित्तमें अधिष्ठित है, सब सत्त्वोंको सम्बोधि प्राप्त करानेकी शिक्षा अपने चित्तमें अधिष्ठित है।"

दूषित ज्ञान, अनियन्त्रित काम तथा अमर्यादित कर्मसे विरत होकर निर्वाणप्रद बोधके बलपर अविद्या, काम और कर्मका विलोप करना चाहिये।

परमार्थपथके पथिकोंको अहङ्कार, आसक्ति, स्वार्थ और अशिष्ट व्यवहारसे उपराम होना चाहिये।

विज्ञानवादके अनुसार मन और विज्ञानसंज्ञक चित्त ही बन्ध, मोक्ष, समुत्पत्ति, निरोधादिका विषय है। -

"चित्तं प्रवर्तते चित्तं चित्तमेव विमुच्यते।
चित्तं हि जायते नान्यच्चित्तमेव निरुध्यते।।"
(लङ्कावतारसूत्रगाथा १४५)

जब चित्त बहुल - सङ्कल्परूपी अन्धकारसे अभिभूत रहता है, प्रचण्डवायुवेगसमन्वित विद्युत्के समान चञ्चल होता है और रागद्वेषादि मलोंसे लिप्त रहता है, तब वह वज्रयानियोंके मतमें संसाररूप है। -

**"अनल्प संङ्कल्प-तमोऽभिभूतं प्रभञ्जनोन्मत्त - तडिच्चलञ्च।
रागादिदुर्वारमलावलिप्तं चित्तं विसंसारमुवाच वज्री।।"
(प्रज्ञोपायविनिश्चयसिद्धि ४.२२)**

वही चित्त जब प्रकाशमान होकर कल्पनासे विमुक्त होता है, रागादि मलोंके लेपसे विरहित होता है, ग्राह्य - ग्राहक - भावकी दशासे पारङ्गत हो जाता है, तब निर्वाण कहलाता है। -

**"प्रभास्वरं कल्पनया विमुक्तं प्रहीणरागादिमलप्रलेपम्।
ग्राह्यं न च ग्राहकमग्रसत्त्वं तदेव निर्वाणपदं जगाद।।"
(प्रज्ञोपायविनिश्चयसिद्धि ४.२४)**

"चित्तं मनश्च विज्ञानं संज्ञा वैकल्पवर्जिता:" (लङ्कावतार ३. ४०)- चित्त, मन तथा विज्ञप्ति - विज्ञानके अन्य पर्याय हैं। चित्त वस्तुरूप धर्मोंकी बीजावस्था है। यह विज्ञानरूपसे स्फुरित होकर व्यवहार-साधक होता है। अत: चित्त आलयविज्ञान है। चेतनाका सम्पादक **'चित्त'** है। मननका सम्पादक होनेसे चित्त ही **'मन'** माना जाता है। विषयग्रहणमें हेतु होनेके कारण वही **'विज्ञान'** कहा जाता है। -

**"चित्तमालयविज्ञानं मनो यन्मननात्मकम्।
गृह्णाति विषयान् येन विज्ञानं हि तदुच्यते।।"
(लङ्कावतार, गाथा १०२)**

मानसकर्म **'चेतना'** है और वाचिक तथा कायिक कर्म **'चेतनाजन्य'** है । **"चेतना मानसं कर्म तज्जे वाक्कायकर्मणी"** **(अभिधर्मकोष ४.१)** ।

लोकनाथ बुद्धकी यह उक्ति है कि चित्त चित्तको नहीं देखता। सुतीक्ष्ण असिधारा भी जिस प्रकार अपनेको काटनेमें समर्थ नहीं, उसी प्रकार चित्त स्वयंको देखनेमें समर्थ नहीं होता।-

"उक्तं च लोकनाथेन चित्तं चित्तं न पश्यति।
न च्छिनत्ति यथाऽऽत्मानमसिधारा तथा मनः।।"
(बोधिचर्यावतार ९.१७)

बाह्य जगत् दृष्टिगोचर होनेपर भी वस्तुतः नहीं है। विचित्र तथा विविधरूपोंमें परिलक्षित चित्त वस्तुतः एकरूप है। यह भोगायतन देह तथा विविध वस्तुओंके उपभोगरूपसे प्रतिष्ठित बुद्धिरूप चित्त ही एकमात्र वास्तव सत् है, ऐसा मेरा कथन है। -

"दृश्यते न विद्यते बाह्यं चित्तं चित्रं हि दृश्यते।
देहभोगप्रतिष्ठानं चित्तमात्रं वदाम्यहम्।।"
(लङ्कावतार ३.३३)

"बुद्धिस्वरूपमेकं हि वस्त्वस्ति परमार्थतः।
प्रतिभानस्य नानात्वान्न चैकत्वं विहन्यते।।"
(सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह ४.२.६)

ग्राह्य, ग्राहक तथा ग्रहणरूपसे; अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवरूपसे तद्वत् ज्ञाता, ज्ञान एवम् ज्ञेयरूपसे निर्विभाग बुद्धिरूप चित्त ही भ्रान्तोंको परिलक्षित होता है। यह दृश्यवर्ग चित्तमात्र है। -

"चित्तमात्रं न दृश्योऽस्ति द्विधा चित्तं हि दृश्यते।
ग्राह्यग्राहकभावेन शाश्वतोच्छेदवर्जितम्।।"
(लङ्कावतार ३.६५)

''अविभागो हि बुद्ध्यात्मा विपर्यासितदर्शनैः।
ग्राह्यग्राहकसंवित्तिभेदवानिव लक्ष्यते।।''
(सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह पृ. १२)

बौद्धागमसिद्ध आत्मा उत्पत्तिविनाशशून्य, सर्वसङ्कल्पवर्जित अद्वय ज्ञानस्वरूप है। यह तथ्य चर्याचर्यविनिश्चयकी संस्कृतटीकामें समुद्धृत निम्नलिखित वचनके अनुशीलनसे सिद्ध है। -

''यस्य स्वभावो नोत्पत्तिर्विनाशो नैव दृश्यते।
तज्ज्ञानमद्वयं नाम सर्वसङ्कल्पवर्जितम्।।''
(चर्याचर्यविनिश्चयकी संस्कृतटीकामें समुद्धृत, अद्वयवज्रसिद्धि)

श्रीवसुबन्धुके अनुसार विचार्य और विचारक विज्ञानका परिणाम है। अतएव जो कुछ है, विज्ञप्तिमात्र है। अर्थात् ग्राह्य - ग्राहकरूप विकल्प विज्ञानपरिणाम होनेसे विज्ञानमात्र है। -

''विज्ञानपरिणामोऽयं विकल्पो यद्विकल्प्यते।
तेन तन्नास्ति तेनेदं सर्वं विज्ञप्तिमात्रकम्।।''
(त्रिंशिका १७)

''सब धर्म, संस्कार, भाव, अभाव असत् हैं। जीव और जगत्‌की समुपलब्धि स्वप्न, मरीचिका, उदकचन्द्र, प्रतिबिम्ब और प्रतिश्रुतितुल्य है। उनकी सत्ता, असत्ता मायोपम है। ग्राह्यग्राहकरूप दर्शन और निमित्तसंज्ञक विकल्प चित्त, मन, विज्ञान या विज्ञप्तिका परिणाममात्र है।।''

संवृति - सत्यरूप व्यावहारिक सत्य जीवनयापनके तुल्य ही परमार्थसत्यरूप कूटस्थसत्यमें मनःस्थितिके लिये भी उपयोगी है। कारण यह है कि उपेयकी सिद्धि उपायके अधीन है। - **''उपायभूतं**

व्यवहारसत्यमुपेयभूतं परमार्थसत्यम्" (मध्यमकावतार ६.८०)। अतएव बिना व्यवहारका आश्रय लिए परमार्थका उपदेश नहीं हो सकता और बिना परमार्थके अधिगत किए निर्वाणकी स्फूर्ति नहीं हो सकती। -

"व्यवहारमनाश्रित्य परमार्थो न देश्यते।
परमार्थमनागम्य निर्वाणं नाधिगम्यते।।"
(श्रीनागार्जुन - मध्यमकमूल २४.१०)

शून्यवादमें शून्यता, प्रतीत्य (प्रत्यय) - समुत्पाद्य, उपादायप्रज्ञप्ति, तथता (वैसा ही होना), भूतकोटि (सत्यावसान), धर्मधातु (वस्तुओंकी समग्रता), वज्र , प्रतिपत्, मध्यमा , निःस्वभावता (नैरात्म्य)- समानार्थक हैं। -

"सर्वधर्माणां निःस्वभावता, शून्यता, तथता, भूतकोटिः, धर्मधातुरिति पर्यायाः।"(बोधिचर्या० पृष्ठ० ३५४) -

"हेतुप्रत्ययापेक्षो भावानामुत्पादः प्रतीत्यसमुत्पादः" (माध्य० शा०) - दुःख, जन्म, धर्माधर्म, प्रवृत्ति, तृष्णा, संस्कार और अविद्या तथा फलमूल पुष्प, नाल, पत्र, अङ्कुर, बीजादि - परम्परापरिबोध प्रतीत्यसमुत्पाद है। अर्थात् कारणकार्य -भावरूप धर्मावगति प्रतीत्यसमुत्पाद है। यह हेतुप्रत्ययापेक्ष भावोत्पादरूप है। प्रधान और सहायक हेतुओंसे अथवा प्रत्येक कारणरूप हेतु और कारणसमुदायरूप प्रत्ययसे निष्पन्न कार्यका अवबोधक है।-

"यः प्रतीत्यसमुत्पादः शून्यतां तां प्रचक्षते।
सा प्रज्ञप्तिरुपादाय प्रतिपत्सैव मध्यमा।।"
(मध्यमक का० २४.१८)

सब बुद्धोंका शून्यात्मक तत्त्वविषयक ज्ञान **वज्रयान** है। -

“ सर्वताथागतं ज्ञानं वज्रयानमिति स्मृतम् ।”

(ज्ञानसिद्धि १.३७)

शून्य वज्रवत् दृढ, अखण्डनीय, अछेद्य, अभेद्य और अविनाशी है। अत: दोनोंकी एकरूपता मान्य है। -

“दृढं सारमसौऽशीर्णमच्छेद्याभेद्यलक्षणम्।
अदाहि अविनाशि च शून्यता वज्रमुच्यते।।”

(वज्रशेखर पृ.२३)

बौद्धागमसम्मत वज्रोपम लोकोत्तर शून्यसंज्ञक यह परम तत्त्व आकाशतुल्य अप्रतिष्ठ (निराधार), व्यापक, लक्षणवर्जित वज्रज्ञान है। -

“अप्रतिष्ठं यथाकाशं व्यापि लक्षणवर्जितम्।
इदं तत् परमं तत्त्वं वज्रज्ञानमनुत्तरम्।।”

(ज्ञानसिद्धि १.४७)

वे परमतत्त्वको सत्, असत्, उभय तथा अनुभय - चतुष्कोटि - विनिर्मुक्त मानते हैं। -

“न सन् नासन् न सदसन्न चाप्यनुभयात्मकम्।
चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं तत्त्वं माध्यमिका विदु:।।”

(माध्यमिककारिका १.७, सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह)

‘अस्ति’ - विद्यमानका वाचक है। **‘नास्ति’** - अविद्यमानका वाचक है। **‘उभय’** - विद्यमान तथा अविद्यमानकी एकत्र स्थिति है। **‘अनुभय’** - विद्यमान तथा अविद्यमानके निषेधका वाचक है।

परमार्थ तत्त्व तथता है। वह न सत् है, न असत् ही। तद्वत् उभयात्मक या अनुभयात्मक भी नहीं हैं। वह जन्म - व्यय - वृद्धि - अपक्षय - रहित और असंस्कार्य है। -

"न सन्न न चासन्न तथा न चान्यथा न जायते व्येति न चावहीयते।
न वर्धते नापि विशुध्यते पुनर्विशुध्यते तत्पमार्थलक्षणम्।।"
(आर्य असङ्ग)

श्रीनागार्जुनके मतानुसार परम तत्त्व अष्टविध निषेधोंसे ख्यापित होता है -

"अनिरोधमनुत्पादमनुच्छेदमशाश्वतम्।
अनेकार्थमनानार्थमनागममनिर्गमम् ।।"
(माध्यमिककारिका १.१)

"वह तत्त्व अनिरोध (नाशहीन), अनुत्पाद (उत्पत्तिविहीन), अनुच्छेद (लयविहीन), अशाश्वत (नित्यताविहीन), अनेकार्थ (एकताविहीन), अनानार्थ (नाना अर्थोंसे हीन), अनागम (आगमनरहित) और अनिर्गम (निर्गमविहीन) है।।"

"अपरप्रत्ययं शान्तं प्रपञ्चैरप्रपञ्चितम्।
निर्विकल्पमनानार्थमेतत् तत्त्वस्य लक्षणम्।।"
(माध्यमिककारिका १८.९)

"समारोप और उपदेशविहीन प्रत्यात्मवेद्य, स्वभावरहित शान्त, अशब्दसंवेद्य - अशब्द - अनक्षर, चित्तप्रचारसे रहित अर्थात् ज्ञानागम्य और नानार्थरहित - शून्यसंज्ञक तत्त्वका लक्षण है।।"

"भावाभावौ न तौ तत्त्वं भवेत् ताभ्यां विवर्जितम्।

न देशत्वमतो युक्तं सर्वज्ञो न भवेत्तदा।।"

(ज्ञानसिद्धि १२.४)

"वह तत्त्व न भावरूप है, न अभावरूप ; न वह भावाभावरूप है, न तदुभयवर्जित ही। वह परिच्छिन्नता तथा सर्वज्ञतासे अतीत है।।"

"शून्यता सर्वदृष्टीनां प्रोक्ता निःसरणं जिनैः।
येषां तु शून्यतादृष्टिस्तानसध्यान् बभाषिरे।।"

(मध्यमककारिका १३.८)

"मोक्ष सकल कल्पनासे व्यावृत्त है। शून्य कोई तत्त्व नहीं है। अतएव शून्यतामें भावाभिनिवेश सर्वथा त्याज्य है। मिथ्या दृष्टियोंका निस्सरण (निरसन) शून्यता है। शून्यको तत्त्व समझनेवाले असाध्य हैं।।"

तथापि निर्वाणरूप विनेयोद्धारक धर्मोपदेशक बुद्धकी नित्यता, ध्रुवता, शिवता, धर्ममयता, भावाभावविलक्षणता, उच्छेदानुच्छेदविलक्षणता, नित्यानित्यविलक्षणता. अद्वयता और नमनीयता मान्य है। -

"नित्यो ध्रुवः शिवः कामस्तव धर्ममयो जिन।
विनेयजन हेतोश्च दर्शिता निर्वृतिस्त्वया।।"

(निरुपमस्तव २२)

"न भावो नाप्यभावोऽसि नोच्छेदो नापि शाश्वतः।
न नित्यो नाप्यनित्यस्त्वमद्वयाय नमोऽस्तुते।।"

(परमार्थस्तव ४)

ध्यान रहे, बौद्धप्रस्थानमें "न सन् नासन् न सदसन्न चाप्यनुभयात्मकम्"- यह चार कोटियोंमें निषेध मुखसे वस्तुका प्रतिपादन है, 'न भावो नाप्यभाव:", "न नित्यो नाप्यनित्य:", "नोच्छेदो नापि शाश्वत:।" यह दो कोटियोंमें निषेध मुखसे वस्तुका प्रतिपादन है, "अद्वय " यह एक कोटिमें निषेध मुखसे वस्तुका प्रतिपादन है। परन्तु "नित्यो ध्रुव: शिव: " की उक्तिसे विधिमुखसे वस्तुका प्रतिपादन है। "जो अनित्य नहीं, वह नित्य है। जो अध्रुव नहीं, वह ध्रुव है। जो अशिव नहीं, वह शिव है।" की दृष्टिसे यह एक कोटिमें विधिमुखसे आत्मवस्तुका प्रतिपादन है। नित्यको केवल अनित्यका, ध्रुवको केवल अध्रुवका तथा शिवको केवल अशिवका प्रतिषेध मानें तो प्रतिपाद्यशून्य अभावात्मक - असत् ही सिद्ध होगा। ऐसी स्थितिमें उसे चतुष्कोटि - विनिर्मुक्त कहना वाग्विलासमात्र सिद्ध होगा। बन्ध्या - पुत्र, शश - शृङ्ग, आकाश - कुसुममें बन्ध्या और पुत्र, शश तथा शृङ्ग, आकाश और कुसुम - दोनों शब्द भाववाचक हैं। तथापि बन्ध्यापुत्रादि अलीक पदार्थ हैं। विवाहिता बन्ध्यामें देहगत प्रतिबन्धकताके कारण सन्तानहीनता होती है। नरमें चतुष्पाद, पुच्छ, पक्ष तथा शृङ्ग चारोंसे विहीनता पुरुषार्थ चतुष्टयसाधकता है। वानरमें चतुष्पाद - पक्ष - शृङ्ग - विहीनता धर्म, अर्थ, काम - साधकता है। कपोतादिमें द्विपाद, पुच्छ और पक्षसम्पन्नता अर्थ, कामसाधकता तथा नभचरता है। गवादिमें चतुष्पाद, पुच्छ तथा शृङ्ग - सम्पन्नता अर्थ, कामसाधकता तथा भूचरता है। आर्द्रपृथ्वीमें पुष्पकी उपादानता तथा जलकी निमित्तता सिद्ध है। पङ्किल जलमें तापापनोदक और सुगन्धित पुष्पकी प्रचुर निमित्तता सिद्ध

है। तद्वत् पुष्पाभिव्यक्तिमें भूमि तथा बीजनिष्ठ उष्णता, प्राणदा तथा अवकाशप्रदता भी सन्निहित है, तथापि पुष्पकी भूमिकुसुम, जलकुसुम (जलज)ही संज्ञा है, न कि तेज: कुसुम, वायुकुसुम या आकाशकुसुम। इसका कारण पृथ्वी तथा जलकी प्रधानता या मुख्यता है।

वैदिकप्रस्थानमें "**नान्त:प्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयत:प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्। अदृष्टमवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्य-मव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेय:**" (माण्डूक्योपनिषत् ७)में "नान्त:प्रज्ञं ....." आदि निषेध मुखसे आत्माका प्रतिपादन है। "**शान्तं शिवम्**" - यह विधिमुखसे आत्माका प्रतिपादन है।

"**न सती , न असती, न सदसती**" (सर्वसारोपनिषत् ४)के अनुसार माया न सती है, न असती, न उभयरूपा सदसती ही। परन्तु "**ॐ तदाहु: किं तदासीत्तस्मै स होवाच न सन्नासन्न सदसदिति तस्मात्तम: सञ्जायते।**" (सुबालोपनिषत् १), "**...तम: परे देव एकीभवति परस्तान्न सन्नासन्नासदसदित्ये-तन्निर्वाणानुशासनमिति वेदानुशासनम्**" - से तमस् का लयस्थान और उद्भवस्थान परदेवस्वरूप ब्रह्म भी सत्, असत् तथा सदसत् से विलक्षण सिद्ध होता है। "**सविलासमूलाविद्या सर्वकार्योपाधिसमन्विता सदसद्विलक्षणानिर्वाच्या**" (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ३)के अनुसार मूलाविद्यारूपा माया सत् , असत् से विलक्षणा अनिर्वाच्या है ।

वेदान्ती मायाको सदसद्विलक्षणा अनिर्वाच्या मानते हैं।

नासद्रूपा न सद्रूपा माया नैवोभयात्मिका।
अनिर्वाच्या ततो ज्ञेया मिथ्याभूता सनातनी।।(बृहन्नारदीय)

"माया न असत् है, न सत् ही, न उभयात्मिका ही, वह मिथ्या और सनातनी है। अत: अनिर्वाच्या ही समझने योग्य है।।"

"**अनाद्यनन्तं शुद्धं शिवं शान्तं निर्गुणमित्यादिवाच्यमनिर्वाच्यं चैतन्यं ब्रह्म** " (निरालम्बोपनिषत्), "**सच्चिदानन्दमात्रमेकरसं परमेव ब्रह्म** " (नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत् ५) के अनुसार अनादि, अनन्त, निर्गुण, शुद्ध, शान्त, सत्, चित्, आनन्दादि वाच्य और अभिधावृत्तिसे जाति, क्रिया, गुण, सम्बन्ध, रूढि (समुदायशक्ति)- निमित्तसे अतीत एक, अक्रिय, निर्गुण, असङ्ग, संज्ञा(शब्द) - संज्ञी (शब्दार्थ) - सङ्केत - विनिर्मुक्त होनेके कारण शब्दप्रवृत्तिके निमित्त मनुष्यत्व, देवदत्त्वादि जाति, नीलपीतश्वेतादि गुण, पचनपानादि कर्म, सजातीयादि सम्बन्ध और डित्थ (छिन्नवृक्षका मूल भाग, सर्वशास्त्रवेत्ता विद्वान् श्यामरूप युवा प्रियदर्शन , काष्ठमय हस्ती), डवित्थ (वल्मीककीटसमुद्भूत बृहन्मृत्पिण्ड, काष्ठमय मृग), गौ आदि रूढिसे भी रहित है। -

"**निमित्तं किञ्चिदाश्रित्य खलु शब्दः प्रवर्तते।**
यतो वाचो निवर्तन्ते निमित्तानामभावतः।।
निर्विशेषे परानन्दे कथं शब्दः प्रवर्तते ।।"
(कठरुद्रोपनिषत् ३१, ३२)

वैदिक - प्रस्थानमें "**साक्षात् सदसतः परे** " (**भागवत** १०.८७.१) आदि स्थलोंमें सत् - शब्दका प्रयोग कार्य तथा असत्-शब्दका प्रयोग कारणके अर्थमें किया गया है।

"नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः" (**श्रीमद्भगवद्गीता २.१६**) आदि स्थलोंमें सत् - शब्दका प्रयोग सर्वाधिष्ठानस्वरूप ब्रह्म और असत् - शब्दका प्रयोग परिणाम, परिणामी, विकार, अनित्य, अध्यस्त, सद्भिन्नके अर्थमें किया गया है।

"कथमसतः सज्जायेत" (छान्दोग्योपनिषत् ६.२.२)के अनुसार यह महावैनाशिक पक्ष है। इस पक्षमें बीजके उपमर्द (विलोप, विनाश)से अङ्कुरोत्पत्ति मान्य है। अतः असत् का अर्थ सर्वाभाव तथा सत् का अर्थ विद्यमान अर्थक्रियाकारी है।

तद्वत् **"असन्नेव स भवति । असद्ब्रह्मेति वेद चेत्।"** (**तैत्तिरीयोपनिषत् २.६**) में **'असद्ब्रह्मेति'** स्थलमें असत् का अर्थ अलीक - अविद्यमान है।

"असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत। तदात्मानं स्वयमकुरुत।" (तैत्तिरीयोपनिषत् २.७)के अनुसार असत् का अर्थ अविकृत अव्याकृत ब्रह्म है।

"यत्तत्त्रिगुणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्। प्रधानं प्रकृतिं प्राहुरविशेषं विशेषवत्।।" (**श्रीमद्भागवत ३.२६. १०**), **"सदसद्रूपया"** (**श्रीमद्भागवत १.२. ३०**) के अनुसार प्रकृति, माया, अव्यक्त, प्रधानकी सदसद्रूपता चरितार्थ है। सत् का अर्थ कार्य (व्यक्त) तथा असत् का अर्थ कारण (अव्यक्त) है।

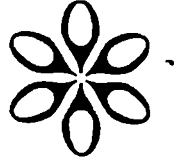
"सदसन्मिश्रयोनिषु" (**श्रीमद्भागवत ३.२७. ३, १०,४६,३९**)के अनुसार सत् का अर्थ देवादि शुभ, असत् का अर्थ पश्वादि अशुभ तथा मिश्रका अर्थ मध्यवर्ती मनुष्य है।

माया कूटस्थ सत् नहीं है। वन्ध्यापुत्रवत् असत् नहीं है। उभयात्मिका भी नहीं है। तीन कोटिसे अतीत अनिर्वचनीया है।

ब्रह्म कार्यात्मक सत् व्यक्त नहीं है। कारणात्मक परिणामी असत् अव्यक्त भी नहीं है। उभयात्मक भी नहीं है। वह अधिष्ठानात्मक सनातन अव्यक्त अनिर्वचनीय है। "न सत्तन्नासदुच्यते" (श्रीमद्भगवद्गीता १३.१२), 'परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः" (श्रीमद्भगवद्गीता ८.२०)।

"न सन् नासन् न सदसन्न चाप्यनुभयात्मकम्" वाक्चातुर्य और लालित्यकी दृष्टिसे शून्य चतुष्कोटिविनिर्मुक्त होनेपर भी वन्ध्यापुत्रादि और पृथिव्यादिसे विलक्षण किन्तु परिणामी है, तब तो वेदान्तसम्मत माया ही सिद्ध है, यदि वन्ध्यापुत्रादि और पृथिव्यादिसे विलक्षण किन्तु अपरिणामी है, तब तो वेदान्तसम्मत ब्रह्म ही सिद्ध है।





४.वेदागम - परिशीलन

कालगर्भित और कालातीत वस्तुके अधिगमके अनुपम स्रोत ऋगादि संज्ञक वेद हैं। उनका प्रतिपाद्य विषय धर्म और ब्रह्म है।

यज्ञ, दान, तप आदि लौकिक - पारलौकिक उत्कर्षके विधायक साधन **धर्म** हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, सन्तोष, स्नेह, सहानुभूति, करुणा, सेवा, मुदिता, सत्यसहिष्णुता, संयम, अनहङ्कारता और अनासक्ति - आदि चित्तशुद्धि और समाधि - साधक साधन **धर्म** हैं। धरणी - निष्ठ गन्ध तथा क्षमा; जलनिष्ठ शैत्य तथा रस; तेजोनिष्ठ दाह, प्रकाश और रूप; वायुनिष्ठ स्पर्श; आकाशनिष्ठ शब्द; अहम् निष्ठ अहन्ता; महः - निष्ठ ममता तथा महत्ता; प्रकृतिनिष्ठ सर्वोपादानता; जीवनिष्ठ कर्तृत्व - भोक्तृत्त्वरूप प्रयोक्तृता और ब्रह्मनिष्ठ सत्ता, चित्ता एवम् प्रियता - संज्ञक धारकता **धर्म** हैं। पार्थिव प्रपञ्च, पृथ्वी, पानी, प्रकाश, पवन, आकाश, अहम्, महत्, अव्यक्त (प्रकृति, प्रधान, माया), जीव (स्थावर - जङ्गम प्राणी तथा परा प्रकृति) एवम् ब्रह्म - विषयक विज्ञान **धर्म** है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह - संज्ञक शीलकी पूर्ण प्रतिष्ठाकी भावनासे अपने अधिकारकी सीमामें इनके अनुपालनकी उत्तरोत्तर उत्कृष्ट वैदिकार्ष विधा **वर्णाश्रम** धर्म है। अहिंसादिके क्रमिक उत्कर्षकी इस विधाके

बिना अहिंसाके नामपर हिंसा, सत्यके नामपर असत्य, अस्तेयके नामपर चौर्य, ब्रह्मचर्यके नामपर व्यभिचार और अपरिग्रहके नामपर परिग्रहका ताण्डव नृत्य सुनिश्चित है। वैदिकार्षविधाके अनुसार ब्राह्मण - परिव्राजकमें अहिंसादिकी पूर्ण प्रतिष्ठा विहित है। सनातन वर्णाश्रम धर्मके अनुपालनसे समाजमें सबको शिक्षा, न्याय, रक्षा, अर्थ तथा सेवादिकी सन्तुलित समुचित व्यवस्थाकी सुलभता एवम् प्रवृत्तिका पर्यवसान निवृत्तिमें तथा निवृत्तिका पर्यवसान निर्वृति (मुक्ति) में सुनिश्चित है। तद्वत् वर्णसङ्करता और कर्मसङ्करतारूप अनर्थकी सम्भावना सनातन धर्म में नहीं है ।

सर्वाधिष्ठान, सर्वरूप, सर्वगत, सर्वान्तर्यामी, सर्वातीत, सर्वरहित सत्, चित्, आनन्द, अद्वय - तत्त्व ब्रह्म है।

जो जिसका उद्गमस्थान होता है, वह उसका आकर्षणकेन्द्र होता है तथा उसमें उसकी गति अवरुद्ध होती है, यह वस्तुनिष्ठ सनातनसिद्धान्त है। प्रत्येक अंश अपने अंशीकी ओर ही समाकृष्ट होता है, यह दार्शनिक अधिनियम है। रज:कण आदि पार्थिव वस्तुओंका आकर्षणकेन्द्र भूमण्डल होता है तथा भूमण्डलमें रज:कणादिकी गति अवरुद्ध होती है। जलधारादि वारुण वस्तुओंका आकर्षणकेन्द्र महोदधि होता है और महोदधिमें जलधारादिकी गति अवरुद्ध होती है। वह्निविस्फुलिङ्गादि आग्नेय वस्तुओंका आकर्षणकेन्द्र वह्निमण्डल होता है और वह्निमण्डलमें वह्निविस्फुलिङ्गादिकी गति अवरुद्ध होती है। प्राणादि वायव्य वस्तुओंका आकर्षणकेन्द्र वायुमण्डल होता है और वायुमण्डलमें प्राणपवनादिकी गति अवरुद्ध होती है। घटाकाशादि आकाशांशोंका आकर्षणकेन्द्र आकाशमण्डल होता है और

आकाशमण्डलमें घटाकाशादिकी गति अवरुद्ध होती है। तद्वत् नभचन्द्रका जलचन्द्र - सदृश एवम् महाकाशका घटाकाश - सदृश अंश - सरीखे जीवोंका आकर्षणकेन्द्र सच्चिदानन्दस्वरूप जीवनधन जगदीश्वर ही होता है।

गति अवरुद्धता अतिशयताके आधानमें असमर्थता अर्थात् विलीनता है। यथा क्षारसिन्धुमें क्षारकी अवरुद्धता उसकी विलीनता है।

सन्निकट निर्विशेषकी उपादान संज्ञा है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध नामक पाँच विशेषताओंसे सम्पन्न पृथ्वीका शब्द, स्पर्श, रूप, रस नामक चार विशेषताओंसे सम्पन्न जल उपादान है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस नामक चार विशेषताओंसे सम्पन्न जलका शब्द, स्पर्श, रूप नामक तीन विशेषताओंसे सम्पन्न तेज उपादान है। शब्द, स्पर्श, रूप नामक तीन विशेषताओंसे सम्पन्न तेजका शब्द, स्पर्श नामक दो विशेषताओंसे सम्पन्न वायु उपादान है। शब्द, स्पर्श नामक दो विशेषताओंसे सम्पन्न वायुका शब्द नामक एक विशेषतासे सम्पन्न आकाश उपादान है। वैखरी वाक् - सम्पन्न आकाशका मध्यमा वाक् - सम्पन्न अहम् उपादान है। मध्यमा वाक् - सम्पन्न अहम्का पश्यन्ती वाक् सम्पन्न महत् उपादान है। पश्यन्ती वाक् सम्पन्न महत्का परा वाक् सम्पन्न अव्यक्त उपादान है।

आपेक्षिक निर्विशेषकी सविशेषमें विलीनता उपादानकी उपादेयमें सन्निहितता है। यथा जलधाराकी पृथ्वीमें विलीनता पृथ्वीके उपादान जलकी कार्यभूत उपादेय पृथ्वीमें सन्निहितता है। **विशेषताके**

अपकर्षसे कारणभावापन्नता तात्त्विक विलीनता है। यथा निज गन्धगुणके विरहसे पृथिवीकी रसगुणसम्पन्न निर्गन्ध जलभावापन्नता तात्त्विक विलीनता है।

निर्विशेषताकी पराकाष्ठा ब्रह्म है। उसका तात्त्विक विलय असम्भव है। महाप्रलयमें त्रिगुणात्मिका प्रकृतिरूपा महामायाका भी विलय उसमें श्रुत और सुसङ्गत है। यथा,-

"...सर्वाणि भौतिकानि कारणे भूतपञ्चके संयोज्य भूमिं जले, जलं वह्नौ, वह्निं वायौ, वायुं आकाशे, चाकाशमहङ्कारे, चाहङ्कारं महति, महदव्यक्ते, अव्यक्तं पुरुषे क्रमेण विलीयते।" (पैङ्गलोपनिषत् ३.१)

महाप्रलयमें न सत्, न असत् और न सदसत् संज्ञक त्रिगुणात्मक प्रधानसे अतीत न सत्, न असत् और न सदसत् सच्चिदानन्दस्वरूप परम देव ही प्रतिष्ठित था। परन्तु उससे तादात्म्यापन्न (सर्वथा एकीभूत) न सत्, न असत् और न सदसत् अनिर्वचनीय अव्यक्त अवश्य था। महासर्गकि आरम्भमें उससे वह अव्यक्त उत्पन्न हुआ। अव्यक्तसे महत् , महत्से अहम् (भूतादि), अहम् से पञ्च तन्मात्रा, पञ्च तन्मात्रासे पञ्च महाभूत, पञ्च महाभूतसे सम्पूर्ण जगत् समुत्पन्न हुआ। -

"सच्छब्दवाच्यमविद्याशबलं ब्रह्म। ब्रह्मणोऽव्यक्तं अव्यक्तान्महत्। महतोऽहङ्कार:। अहङ्कारात् पञ्च तन्मात्राणि। पञ्च तन्मात्रेभ्य: पञ्च महाभूतानि। पञ्च महाभूतेभ्योऽखिलं जगत्।" (त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत् १) ·

"सदेव सोम्येदमग्र आसीत्। तन्नित्यमुक्तमविक्रियं सत्यज्ञानानन्दं परिपूर्णं सनातनमेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म। तस्मिन् मरुशुक्तिकास्थाणुस्फटिकादौ जलरौप्यपुरुषरेखादिवल्लोहित-शुक्लकृष्णगुणमयी गुणसाम्यानिर्वाच्या मूलप्रकृतिरासीत्।...." (पैङ्गलोपनिषत् १)

"...न सन्नासन्न सदसदिति तस्मात्तमः सञ्जायते, तमसो भूतादिर्भूतादेराकाशमाकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापोऽद्भ्यः पृथिवी तदण्डं समभवत्।" (सुबालोपनिषत् १)

"तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रं तेन तन्मात्रता स्मृता।।
तन्मात्राण्यविशेषाणि अविशेषास्ततो हि ते।।
न शान्ता नापि घोरास्ते न मूढाश्चाविशेषिणः।
भूततन्मात्रसर्गोऽयमहङ्कारात्तु तामसात्।।
तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश।
एकादशं मनश्चात्र देवा वैकारिकाः स्मृताः।।
त्वक् चक्षुर्नासिका जिह्वा श्रोत्रमत्र च पञ्चमम्।
शब्दादीनामवाप्त्यर्थं बुद्धियुक्तानि वै द्विज।।
पायूपस्थौ करौ पादौ वाक्च मैत्रेय पञ्चमी।
विसर्गशिल्पगत्युक्ति कर्म तेषां च कथ्यते।।
आकाशवायुतेजांसि सलिलं पृथिवी तथा।
शब्दादिभिर्गुणैर्ब्रह्मन् संयुक्तान्युत्तरोत्तरैः।।
शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः।।
(श्रीविष्णुपुराण १.२.४४ - ५१)

"शब्दादि गुणवान् न होनेसे अर्थात् द्रव्यसंज्ञक शब्दादि तन्मात्रात्मक होनेसे सूक्ष्म आकाशादिको शब्दादि **तन्मात्रा** कहा जाता है। तन्मात्राओंमें विशेष भाव नहीं है, अत एव उन्हें **अविशेष** कहा जाता है। इसके विपरीत शान्त, घोर और मूढात्मक अर्थात् सुख, दुःख, मोहात्मक होनेसे पञ्च स्थूल महा भूतोंको **विशेष** कहा जाता है। तामस अहङ्कारसे यह भूततन्मात्ररूप सर्ग हुआ है। दश इन्द्रियाँ तैजस अर्थात् राजस अहङ्कारसे और उनके अधिष्ठाता देवता वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहङ्कारसे समुत्पन्न कहे जाते हैं। इस प्रकार इन्द्रियोंके अधिष्ठाता दस देवता सहित ग्यारहवाँ मन सात्त्विक हैं। हे द्विज! त्वक्, चक्षु, नासिका, जिह्वा और श्रोत्र -ये पाँचों बुद्धिकी सहायतासे शब्दादि विषयोंको ग्रहण करनेवाली ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। हे मैत्रेय! पायु (गुदा), उपस्थ (लिङ्ग), हस्त (हाथ), पाद (पैर) और वाक् -ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इनके कर्म क्रमशः मल, मूत्रादिका त्याग, शिल्प, गति और वचन बतलाए जाते हैं। आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी -ये पाँचों भूत उत्तरोत्तर शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध नामक गुणोंसे युक्त हैं। ये पाँचों भूत शान्त, घोर और मूढ हैं, अतः **विशेष** कहलाते हैं।। "

"एतावदेव तत्त्वानां साङ्ख्यमाहुर्मनीषिणः।
साङ्ख्ये विधिविधानज्ञा नित्यं साङ्ख्यपथे रताः।।"

(महाभारतशानितपर्व ३०६.३०)

"साङ्ख्यशास्त्रीय विधि - विधानके ज्ञाता और सदा साङ्ख्यमार्गमे ही अनुरक्त रहनेवाले मनीषी साङ्ख्यसम्मत तत्त्वोंकी सङ्ख्या इतनी ही बतलाते हैं। अभिप्राय यह है कि अव्यक्त, महत्, अहङ्कार और शब्दादि

पञ्च तन्मात्रात्मक पञ्च सूक्ष्म महाभूत - इन आठ प्रकृतियोंसहित पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, मन और आकाशादि पञ्च स्थूल भूत -संज्ञक षोडश विकाररूप चौबीस प्रभेद साङ्ख्यप्रस्थानके अनुसार अचित् पदार्थ सिद्ध होते हैं।।"

"यस्माद् यदभिजायेत तत्त्रैव प्रलीयते।
लीयन्ते प्रतिलोमानि सृज्यन्ते चान्तरात्मना।।"
(महाभारतशान्तिपर्व ३०६.३१)

"जो तत्त्व जिससे उत्पन्न होता है, वह उसीमें लीन हो जाता है। अनुलोमक्रमसे उन तत्त्वोंकी उत्पत्ति होती है; परन्तु उनका संहार विलोमक्रमसे होता है। ये सब तत्त्व अन्तरात्माद्वारा ही रचे जाते हैं।।"

"आनुपूर्व्या विनश्यन्ति जायन्ते चानुपूर्वशः।
सर्वाण्यपरिमेयाणि तदेषां रूपमैश्वरम्।।"
(महाभारतभीष्मपर्व ५.१०)

" ये सब क्रमसे नष्ट होते हैं और क्रमसे ही उत्पन्न होते हैं। ये अपरिमेय हैं। इनका रूप ईश्वरकृत है।।"

"अनुलोमेन जायन्ते लीयन्ते प्रतिलोमतः।
गुणा गुणेषु सततं सागरस्योर्मयो यथा।।"
(महाभारतशान्तिपर्व ३०६. ३२)

"जैसे समुद्रसे उठी हुई लहरें फिर उसीमें शान्त हो जाती हैं, वैसे ही सम्पूर्ण गुणात्मक तत्त्व सदा अनुलोमक्रमसे उत्पन्न होते और विलोमक्रमसे अपने कारणभूत गुणात्मक तत्त्वोंमें लीन हो जाते हैं।।"

"बहुधाऽऽत्मा प्रकुर्वीत प्रकृतिं प्रसवात्मिकाम्।

तच्च क्षेत्रं महानात्मा पञ्चविंशोऽधितिष्ठति।।"

(महाभारतशान्तिपर्व ३०६. ३२)

"परमात्मा ही प्रसवात्मिका प्रकृतिको नाना रूपोंमें परिणत करता है। प्रकृति और उसके विकारोंको क्षेत्र कहते हैं। चौबीस तत्त्वोंसे भिन्न जो पचीसवाँ तत्त्व महानात्मा है, वह क्षेत्रमें अधिष्ठातारूपसे निवास करता है।।"

"क्षेत्रं जानाति चाव्यक्तं क्षेत्रज्ञ इति चोच्यते।
आव्यक्तिके पुरे शेते पुरुषश्चेति कथ्यते।। "

(महाभारतशान्तिपर्व ३०६. ३८)

"वह अव्यक्त (प्रकृति) - संज्ञक क्षेत्रको जानता है, अतः क्षेत्रज्ञ कहा जाता है और शरीररूपी प्राकृत पुरोंमें अन्तर्यामिरूपसे शयन करता है, अतः पुरुष कहा जाता है।।"

"बुद्धमप्रतिबुद्धत्वाद् बुध्यमानं च तत्त्वतः।
बुध्यमानं च बुद्धं च प्राहुर्योगनिदर्शनम्।।"

(महाभारतशान्तिपर्व ३०७. ४८)

"जो स्वयम्प्रकाश और सर्वज्ञ परमात्मा है, वही बुद्ध है। परमात्मतत्त्वको न जाननेके कारण जिज्ञासु जीवात्मा है, उसकी बुध्यमान संज्ञा है। इस प्रकार, सेश्वर साङ्ख्यरूप योगसिद्धान्तानुसार बुद्ध और बुध्यमान - ये दो चेतन माने गये हैं।।"

"एष ह्यप्रतिबुद्धश्च बुध्यमानश्च तेऽनघ।।
प्रोक्तो बुधश्च तत्त्वेन यथाश्रुतिनिदर्शनात्।"

(श्रीमहाभारत - शान्तिपर्व ३०८. २१,२१.१/२)

"निष्पाप नरेश! इस प्रकार मैंने तुमसे अप्रतिबुद्ध (क्षर), बुध्यमान (अक्षर जीवात्मा) और बुद्ध (ज्ञानस्वरूप सर्वज्ञ) परमात्माका श्रुतिके निर्देशानुसार यथार्थरूपसे प्रतिपादन किया है।।"

स्वयं श्रुतिने आत्माको सन्मात्र, सत्य, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, निरञ्जन, विभु, अद्वय, आनन्द, पर, प्रत्यक्, एकरस कहा है। -

"सन्मात्रो नित्यः शुद्धो बुद्धः मुक्तो निरञ्जनो विभुरद्वय आनन्दः परः प्रत्यगेकरसः" ....."बृहत्वान्नित्यं शुद्धं बुद्धं मुक्तम्" (नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत् ९) , "चिदात्मानं नित्यशुद्धबुद्ध-मुक्तसदद्वयः। परमानन्दसन्देहो वासुदेवोऽहमोमिति।।" (अक्ष्युपनिषत् ४७)

श्री.आनन्दगिरिके अनुसार कार्यकारणविरहितत्व नित्यत्व है। अकारणत्व **शुद्धत्व** है। अजडत्व **बुद्धत्व** है। अविद्या, काम, कर्म - पारतन्त्र्यराहित्य **मुक्तत्व** है। - **"नित्यत्वं कार्यकारणविरहितत्वं, शुद्धत्वं अकारणत्वं, बुद्धत्वं अजडत्वं, मुक्तत्वमविद्याकामकर्म-पारतन्त्र्यराहित्यम्" (श्रीमद्भगवद्गीता १)**

उक्त रीतिसे आत्माका **बुद्ध** नाम वैदिक है।

शक्तिकार्योंका आकर्षण तथा विलय - स्थान शक्तिमान् होता है। यथा वह्निविस्फुलिङ्गादि आग्नेय वस्तुओंका आकर्षण और लय - स्थल दाहिकाशक्तिसम्पन्न वह्निमण्डल होता है।

मायाके कार्यानुकार्य वाक् तथा मनका आकर्षणकेन्द्र ब्रह्मशक्ति मायाके द्वारसे अखण्डात्ममण्डलस्वरूप ब्रह्म है। अतः ब्रह्म मन तथा वाणीका अविषय है।

सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म ही जगत्का वास्तव रूप है। महाप्रलयमें महेश्वरसे तादात्म्यापन्न उनकी महामायामें विलीन जगत् महेश्वरसंज्ञक ब्रह्मस्वरूप ही था। उसीको अव्यक्तमूर्ति कालके द्वारा महेश्वरने पृथक्-रूपसे प्रकट किया है। केवल रूप, कार्य और समाख्या (नाम) की दृष्टिसे ही जगत् की असत्ता मान्य है। जगत् जैसे वर्तमानमें है, वैसे ही पूर्वमें था और भविष्यमें भी वैसा ही रहेगा। आकारभेदसे वस्तुगत तात्त्विक अभेद सर्वथा अमान्य ही है। -

"विश्वं वै ब्रह्मतन्मात्रं संस्थितं विष्णुमायया।
ईश्वरेण परिच्छिन्नं कालेनाव्यक्तमूर्तिना।।
यथेदानीं तथाग्रे च पश्चादप्येतदीदृशम्।"
(श्रीमद्भागवत ३.१०. १२.१२.१/२)

"असत्वादात्मनोऽन्येषां भावानां तत्कृता भिदा।
गतयो हेतवश्चास्य मृषा स्वप्नदृशो यथा।।"
(श्रीमद्भागवत ११.१३.३१)

"आत्मासे अन्य देहादि प्रतीयमान नामरूपात्मक प्रपञ्चका कुछ भी अस्तित्व नहीं है। अत: उनके कारण होनेवाले वर्णाश्रमादि भेद, स्वर्गादि फल और उनके कारणभूत कर्म - ये सबके - सब आत्माके लिये वैसे ही मिथ्या हैं ; जैसे स्वप्नदर्शी पुरुष द्वारा देखे हुए सबके - सब पदार्थ।। "

ध्यान रहे, उपादेयकी अपेक्षा सन्निकट निर्विशेष, शुद्ध, विभु, प्रत्यक् और नित्यकी उपादान संज्ञा है। यही कारण है कि यद्यपि पृथ्वीसे पानी उत्पन्न होता है, पृथ्वीमें पानी स्थित होता है और

पृथ्वीमें पानी विलीन होता है, तथापि पृथ्वी पानीका अभिव्यञ्जक संस्थानमात्र है, न कि उपादान। कारण यह है कि पृथ्वीमें शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस कारणगत गुणसंज्ञक विशेषताएँ हैं और गन्ध स्वगत विशेषता है, जब कि जल स्वभावसे निर्गन्ध है। उसमें शब्द, स्पर्श और रूप कारणगत विशेषताएँ हैं तथा रस स्वगत विशेषता है। इस प्रकार, पाँच विशेषताओंसे सम्पन्न पृथ्वीकी अपेक्षा चार विशेषताओंसे सम्पन्न जल सन्निकट निर्विशेष है, अतएव पृथ्वी पानीका अभिव्यञ्जक संस्थानरूप निमित्त होनेपर भी उपादेयरूप कार्य है और पानी उससे पूर्व सिद्ध उपादान है। यही तथ्य पानी और अग्निके सम्बन्धमें भी चरितार्थ है। महाभारतादिमें पानीको अग्निका कारण माना गया है। पानीसे अग्निकी उत्पत्ति, पानीमें दाहक और शोषक वडवानलकी स्थिति और पानीमें अग्निका विलय भी दृष्ट है। आग्नेय वाक् का अवरोध भी जलमें अनुभूत है, तथापि तेज जलसे सन्निकट निर्विशेष होनेसे उपादान है और जल तेजसे सन्निकट सविशेष होनेके कारण उपादेय है। वायुसे अग्निका उद्दीप्त होना, उष्णताकी प्रगल्भतासे वर्षा और पसीना होना, पसीने जम जानेपर शरीरमें मैल बनना वायुसे अग्निका , अग्निसे जलका और जलसे पृथ्वीका बनना सिद्ध करता है। तद्वत् मैलका जलसे क्षालन होना, अग्निसे जलका लोप होना और वायुसंज्ञक संवर्गमें अग्निका विलीन होना, वायुसे अग्निका उद्दीप्त होना भी पानीको पृथ्वीका, तेजको जलका और वायुको तेजका उपादान कारण सिद्ध करता है।

वायुकी उत्पत्ति, स्थिति, गति और संहृतिका आश्रय शब्द -

गुणाश्रय आकाश है। उसकी वायुसे सन्निकट निर्विशेषता, निर्विकारता, सूक्ष्मता, विभुता और प्रत्यक्ता उसे वायुका उपादान सिद्ध करता है।

ध्यान रहे, जगत् की अनित्यता, अचिद्रूपता तथा दुःखरूपता प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे सिद्ध है। साथ ही श्रुतियोंने आत्माकी अद्वितीयता और जगत् की ब्रह्मरूपताका प्रतिपादन भी किया है। ऐसी स्थितिमें जगत् की साक्षात् ब्रह्मरूपता असिद्ध ही है। **अधिष्ठानशेषावशेष (अधिष्ठानावशेष) कल्पितका नाश होता है,** यह स्वीकार करनेकी बाध्यता है। श्रुत्युक्त समग्र वचनोंके अनुशीलनसे जगत्के वास्तव स्वरूपका निर्धारण सम्भव है।

"ब्रह्म सत्यं तपः सत्यं सत्यं चैव प्रजापतिः ।
सत्याद्भूतानि जातानि सत्यं भूतमयं जगत् ।।"
(महाभारत - आश्वमेधिकपर्व ३६.३४)

के अनुशीलनसे यह सिद्ध है, 'ब्रह्म सत्य है, तप सत्य है और प्रजापति भी सत्य है । सत्यसे ही सम्पूर्ण भूतों का जन्म हुआ है । यह भौतिक जगत् सत्य है ।", **"सत्यस्य सत्यम्"** (बृहदारण्यकोपनिषत् २.३.६) के अनुशीलनसे जगत् सत्य और ब्रह्म सत्यका भी सत्य सिद्ध होता है। **"नित्योऽनित्यानाम्"**(कठोपनिषत् २.५.१३) के अनुशीलनसे जगत् अनित्य और ब्रह्म नित्य सिद्ध होता है। **"असतो मा सद्गमय"** (बृहदारण्यकोपनिषत् १.३.२८), **"कार्याकार्यमसद्विद्धि "**(तेजोबिन्दूपनिषत् ३.५५), **"अजकुक्षौ जगन्नास्ति ह्यात्मकुक्षौ जगन्नहि"** (अध्यात्मोपनिषत् २२), **"कार्यं चेत्कारणं किञ्चित्कार्याभावे न कारणम्"**

(तेजोबिन्दूपनिषत् ५.२६),"ना काचन भिदाऽस्ति नैव काचन भिदाऽस्ति" (नृसिंहोत्तरतापिन्युपषत् ८) के अनुशीलनसे जगत् असत्कल्प तथा ब्रह्ममें अध्यस्त सिद्ध होता है। "नित्यो नित्यानाम्"(कठोपनिषत् २.५.१३) के अनुशीलनसे जगत् नित्य और ब्रह्म नित्योंका भी नित्य सिद्ध होता है।"जगत्सर्वमिदं मिथ्या प्रतीतिः" (त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत् १.३०), "सर्वं मिथ्येति निश्चिनु" (तेजोबिन्दूपनिषत् ५.५८), "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" (निरालम्बोपनिषत्) के अनुशीलनसे जगत् मिथ्या और ब्रह्म सत्य सिद्ध होता है। "असत्कल्पो विकल्पोऽयं विश्वमित्येकवस्तुनि । निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः ।।" के अनुशीलनसे जगत् की असत्कल्पता सिद्ध है। "परमार्थतो न किञ्चिदस्ति क्षणशून्यानादिमूलाऽविद्याविलासत्वात् । तत्कथमिति। एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म। नेह नानास्ति किञ्चन। तस्माद् ब्रह्मव्यतिरिक्तं सर्वं बाधितमेव। सत्यमेव परं ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।" (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ३) के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि जगत् स्वतः अस्तित्वविहीन अविद्याका कार्य होनेसे वस्तुतः नहीं है। एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म ही सत्य है। उससे भिन्न नाना कुछ भी नहीं है। जो कुछ परिलक्षित है, वह बाधित ही है। सत्य, ज्ञान, अनन्त ब्रह्म ही सत्य है। अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवरूप त्रिविध जगत् न सत् है, न असत् केवल आभासमात्र है।- "आभासमात्रमेवेदं न सन्नासज्जगत्त्रयम्" (अन्नपूर्णोपनिषत् ५.३३), "सत्यासत्यं जगन्नास्ति"(तेजोबिन्दूपनिषत् ६.७१)।

मूलाविद्या अपने कार्योंके सहित सत् और असत् से विलक्षणा अनिर्वाच्या है- "**सविलासमूलाविद्या सर्वकार्योपाधिसमन्विता सदसद्विलक्षणानिर्वाच्या**" (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ३)। माया न सती है, न असती, न उभयरूपा सदसती ही - "**न सती , न असती, न सदसती**" (सर्वसारोपनिषत् ४), "**न सन्नासन्न सदसदिति**" (सुबालोपनिषत् १)

जो कुछ अनात्म - प्रपञ्च है, वह स्वपरविरोधी ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानसे बाध्य तथा स्वपरविरोधी ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानके तुल्य न सत् है, न असत् न सदसत् ; न भिन्न, न अभिन्न, न भिन्नाभिन्न है; न सभाग, न निर्भाग, न उभयात्मक ही है। वह नवकोटि - विनिर्मुक्त है। - "**न सन्नासन्न सदसदभिन्नाभिन्नं न चोभयम्। न सभागं न निर्भागं न चाप्युभयरूपकम्।। ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानं हेयं मिथ्यात्वकारणात्।।**" (परब्रह्मोपनिषत् १)। श्रीभगवत्पाद शङ्कराचार्यमहाभागने मायाको उक्त नवकोटि - विनिर्मुक्त बताकर उक्त श्रौत - सिद्धान्तका ही प्रकाश किया है -

"सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो
भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो।
साङ्गाप्यनङ्गाप्युभयात्मिका नो
महाद्भुतानिर्वचनीयरूपा ।।"

(विवेकचूडामणि १११)

"**सच्चिदानन्दरूपमिदं सर्वं सद्धीदं सर्वं तत्सदिति चिद्धीदं सर्वम्**", "**अहमेवेदं सर्वम्**", "**आत्मैवेदं सर्वम्** ", " **ब्रह्म वा**

इदं सर्वम्'' (नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत् ७) के अनुशीलनसे जगत् सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म, आत्मा, अहमात्मक सिद्ध होता है। जबकि ब्रह्मात्मतत्त्वकी असच्चिदानन्दरूपता सर्वथा असिद्ध है।

श्रुति स्वयं ही कारण और कार्यकी अतात्त्विकताका प्रतिपादन करती है - **''नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्''(कठोपनिषत् १.२.१८)**

जगत् मायाका कार्य है, अतएव मिथ्या है। तथापि इसकी अर्थक्रियाकारिताका रहस्य इसमें अनुगत अधिष्ठानस्वरूप ब्रह्मकी सच्चिदानन्दरूपता है। -

''मायाकार्यमिदं भेदं, अस्ति चेद् ब्रह्मभावनम् ''(तेजोबिन्दूपनिषत् ६.१००)

श्रौतप्रस्थानके अनुसार ब्रह्मकी जीवरूपता मृद्घट, कनककुण्डल और शुक्तिरजतके तुल्य नाममात्र है। जगत् नभनैल्य, मरुजल, स्थाणुपुरुष, शून्यवेताल, गन्धर्वनगर, द्विचन्द्र, नभोवृक्ष, जलतरङ्ग, बन्ध्यापुत्र, मृद् घटके तुल्य मिथ्या है। -

**''यथा मृदि घटो भ्रान्तिः शुक्तौ हि रजतस्थितिः।
तद्वद् ब्रह्मणि जीवत्वं वीक्ष्यमाणे विनश्यति।।
यथा मृदि घटो नाम कनके कुण्डलाभिदा।
शुक्तौ हि रजतख्यातिर्जीवशब्दस्तथा परे।।
यथैव व्योम्नि नीलत्वं यथा नीरं मरुस्थले।
पुरुषत्वं यथा स्थाणौ तद्वद्विश्वं चिदात्मनि।।
यथैव शून्यो वेताले गन्धर्वाणां पुरं यथा।**

यथाकाशे द्विचन्द्रत्वं तद्वत्सत्ये जगत्स्थितिः।।
यथा तरङ्गकल्लोलैर्जलमेव स्फुरत्यलम्।
घटनाम्ना यथा पृथ्वी पटनाम्ना हि तन्तवः।।
जगन्नाम्ना चिदाभाति सर्वं ब्रह्मैव केवलम्।
यथा बन्ध्यासुतो नास्ति यथा नास्ति मरौ जलम्।।
यथा नास्ति नभो वृक्षस्तथा नास्ति जगत्स्थितिः।
गृह्यमाणे घटे यद्वन्मृत्तिका भाति वै बलात्।।
वीक्ष्यमाणे प्रपञ्चे तु ब्रह्मैवाभाति भासुरम्।
(योगशिखोपनिषत् ४. १३ - १९.१/२)

"अनुत्पन्नमिदं जगत्" (तेजोबिन्दूपनिषत् ६.७१) की उक्तिसे श्रुतिने अजातवादको ही ख्यापित किया है। पूर्वसिद्ध नित्य विद्यमान सत् की मायिक उत्पत्ति ही सम्भव है। नित्य अविद्यमान असत् की मायिक उत्पत्ति भी असम्भव है। सदसदात्मक कोई वस्तु नहीं है, जिसकी उत्पत्ति सम्भव हो। वस्तुतः सत् से सत् की, असत् की तथा सदसत् की उत्पत्ति सर्वथा असम्भव है। तद्वत् असत् से सत्, असत् और सदसत् की उत्पत्ति भी सर्वथा असम्भव है। तद्वत् सदसत् से सत्, असत् तथा सदसत् की समुत्पत्ति भी सर्वथा असम्भव है। अतः अज, अव्यय शिवात्मतत्त्वसे मायिक समुत्पत्ति ही सम्भव है, न कि वास्तविक। अतएव वासनाओंका क्रमशः परित्याग ही विहित तथा उचित है। -

"तस्माद्वासनया युक्तं मनो बद्धं विदुर्बुधाः।
सम्यग्वासनया त्यक्तं मुक्तमित्यभिधीयते।।

सम्यगालोचनात्सत्याद्वासना प्रविलीयते।
वासना विलये चेतः शममायाति दीपवत्।।"
(मुक्तिकोपनिषत् २.१६,१७)

"भोगेच्छारूप वासनासे युक्त मन बद्ध है, ऐसा मनीषियोंने जाना है। वासनासे भली भाँति विरहित मन ही मुक्त - माना जाता है।। भोग्यवस्तुओंकी निःसारता और आत्मसत्यकी साररूपताके परिचिन्तनसे वासना प्रविलीन होती है। वासनाके विलयसे चित्त दीपतुल्य निर्वाण लाभ करता है। इस प्रकार चित्तकी ही बद्धता और मुक्तता मान्य है।।"

"असङ्गव्यवहारत्वाद् भवभावनवर्जनात्।
शरीरनाशदर्शित्वाद् वासना न प्रवर्तते।
वासनासम्परित्यागाच्चित्तं गच्छत्यचित्तताम्।।"
(मुक्तिकोपनिषत् २.२८)

"आत्माकी सच्चिदानन्दरूपता और जगत् की असच्चिदानन्दरूपताके दृढ बोधसे और व्यवहारमें असङ्गता, पुनर्भवकी अभावना और शरीरकी नश्वरताके अनुदर्शनसे वासनाक्षय सम्भव है। वासनाके क्षयसे मनोनाश सुनिश्चित है ।।"

"न हि चञ्चलताहीनं मनः क्वचन दृश्यते।
चञ्चलत्वं मनोधर्मो वह्नेर्धर्मो यथोष्णता।।"
"एषा हि चञ्चला स्पन्दशक्तिश्चित्तत्त्वसंस्थिता।
तां विद्धि मानसीं शक्तिं जगदाडम्बरात्मिकाम्।।"
"यत्तु चञ्चलताहीनं तन्मनोऽमृतमुच्यते।
तदेव च तपः शास्त्रसिद्धान्ते मोक्ष उच्यते।।

तस्य चञ्चलता यैषा त्वविद्या वासनात्मिका।
वासनाऽपरनाम्नीं तां विचारेण विनाशय।।"
"भोगैकवासनां त्यक्त्वा त्यज त्वं भेदवासनाम्।
भावाभावौ ततस्त्यक्त्वा निर्विकल्पः सुखी भव।।
एष एव मनोनाशस्त्वविद्यानाश एव च।
यत्तत्संवेद्यते किञ्चित्तत्रास्थापरिवर्जनम्।
अनास्थैव हि निर्वाणं दुःखमास्थापरिग्रहः।।"
(महोपनिषत् ४. ९९-१०२, १०९-१११)

"चञ्चलतासे हीन मन कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। जिस प्रकार अग्निका धर्म उष्णता है, उसी प्रकार मनका धर्म चञ्चलता है। चिद्रूप आत्मा इस मननी स्पन्दशक्तिसे सम्पन्न होते ही चित्त - संज्ञाको धारण करता है। चैत्यसंज्ञक जगदाडम्बर इसीका विचित्र उल्लास है। मननीशक्तिरूपा चञ्चलतासे विहीन मन अमृतस्वरूप मृत्युञ्जय आत्मा ही है। मनःस्थैर्य वेदान्तशास्त्रसिद्धान्तमें तप और मोक्ष कहा जाता है। मनकी चञ्चलताका नामान्तर वासनात्मिका अविद्या है। विषयाध्यासरूप वासनात्मक चाञ्चल्यका निवारण कूटस्थ नित्य अद्वय चिदात्माके विचारसे सम्भव है। हे शिष्य, भोगवासना और भेदवासनाका त्याग करनेके अनन्तर वासनाश्रय अन्तःकरणरूप भाव और उसके लयस्थान अव्याकृतरूप अभावका त्यागकर जीवन्मुक्तिके विलक्षण आनन्दका अनुभव कर। निःसन्देह यहीं मनोनाश है और यही अविद्यानाश भी है। जो कुछ दृश्यसंज्ञक संवेद्य है, उसमें सत्ता, चित्ता और प्रियतारूप आस्थाका परित्याग मनोनाशका मूल है। जब कभी, जहाँ कहीं, जो

कुछ परिलक्षित हो, उसमें अनास्था ही निर्वाण है और दृष्टिगोचर जगत्में आस्थाका सञ्चय ही दु:ख है।।"

"चित्तसत्ता परं दु:खं चित्तत्याग: परं सुखम्।
अतश्चित्तं चिदाकाशे नय क्षयमवेदनात्।।"
(अन्नपूर्णोपनिषत् ५. ११७)

"चित्तकी सत्ता परम दु:ख है। चित्तका त्याग परम सुख है। अत: अध्यस्तताके बोधसे अधिष्ठानस्वरूप चिदाकाशमें चित्तको सन्निहितकर उसका क्षय कर।।"

"निर्दग्धवासनाबीज: सत्तासामान्यरूपवान्।
सदेहो वा विदेहो वा न भूयो दु:खभाग्भवेत्।।"
"एतावदेवाविद्यात्वं नेदं ब्रह्मेति निश्चय:।
एष एव क्षयस्तस्य ब्रह्मेदमिति निश्चय:।।"
(अन्नपूर्णोपनिषत् ५.१८,१९)

"जिसका चित्त चिदाकाशस्वरूप सत्तासामान्यरूप है, उसकी चित्तमूल वासनाबीज अविद्या दग्ध हो चुकी है। वह सदेह हो, या विदेह पुन: दु:खी नहीं होता।। "

"जो कुछ अनात्मप्रपञ्च है, वह ब्रह्मका विवर्त होनेसे ब्रह्मरूप ही है। ऐसा होनेपर भी चित्तादि किसी वस्तुको - यह ब्रह्म नहीं है, ऐसा निश्चय कर लेना ही अविद्या है। इसके विपरीत यह ब्रह्म ही है, ऐसा निश्चय करना उस अविद्याका क्षय है।।"

"दृश्यं नास्तीति बोधेन मनसो दृश्यमार्जनम्।
सम्पन्नं चेत्तदुत्पन्ना परा निर्वाणनिर्वृति:।।

अशेषेण परित्यागो वासनायां स उत्तमः।
मोक्ष इत्युच्यते सद्भिः स एव विमलक्रमः।।
ये शुद्धवासना भूयो न जन्मानर्थभागिनः।
ज्ञातज्ञेयास्त उच्यन्ते जीवन्मुक्ता महाधियः।।
पदार्थभावनादार्ढ्यं बन्ध इत्यभिधीयते।
वासनातनवं ब्रह्मन् मोक्ष इत्यभिधीयते।।''
(महोपनिषत् २.३८ -४१)

''दृश्य - जगत् है ही नहीं, यह बोध हो जानेपर मनकी दृश्यसे उपरामतारूप परिशुद्धि हो जाती है। जब यह बोध परिपक्व हो जाता है, तब उससे निर्वाणरूपी परमा शान्ति समुपलब्ध होती है। वासनाओंका जो नि:शेष परित्याग है, वही श्रेष्ठ त्याग है। उसी विशुद्ध दशाको सत्पुरुषोंने मोक्ष कहा है। हे महाबुद्धिमान् ब्रह्मन् ! पुनः जो शुद्ध वासनाओंसे युक्त हैं एवम् जिनका जीवन अनर्थोंसे शून्य है तथा जिन्हें ज्ञेयतत्त्व ज्ञात है, वे जीवन्मुक्त कहलाते हैं। पदार्थ भावनाकी दृढता ही बन्ध कहलाती है और वासनाओंके क्षयको ही मोक्ष कहा जाता है।।''

''जीवन्मुक्तपदं त्यक्त्वा स्वदेहे कालसात्कृते।
विशत्यदेहमुक्तत्वं पवनोऽस्पन्दतामिव।।
विदेहमुक्तो नोदेति नास्तमेति न शाम्यति।
न सन्नासन्न न दूरस्थो न चाहं न च नेतरः।।
ततः स्तिमितगम्भीरं न तेजो न तमस्ततम्।
अनाख्यमनभिव्यक्तं सत्किञ्चिदवशिष्यते।।
न शून्यं नापि चाकारो न दृश्यं नापि दर्शनम्।

न च भूतपदार्थौघसदनन्ततया स्थितम्।।
किमप्यव्यपदेशात्मा पूर्णात्पूर्णतराकृतिः।
न सन्नासन्न सदसन्न भावो भावनं न च।।
चिन्मात्रं चैत्यरहितमनन्तमजरं शिवम्।
अनादिमध्यपर्यन्तं यदनादि निरामयम्।।''
(महोपनिषत् २.६३ -६८)

''शरीरके कालकवलित होनेपर वह जीवन्मुक्तदशाको त्यागकर गतिहीन पवनके समान विदेहमुक्तदशाको प्राप्त होता है। विदेहमुक्त अवस्थामें जीवकी न उन्नति होती है, न अवनति ही और न उसका लय ही होता है। वह निरावरण ब्रह्मरूप अवस्था न सत् है, न असत् है, न दूरस्थ ही। उसमें न अहम्भाव है, न इदं - भाव ही। वह गम्भीर स्तब्ध - दशा है। उसमें न तेज व्याप्त होता है, न अन्धकार ही। उसमें अनाख्य (अनिर्वचनीय) और अनभिव्यक्त एक प्रकारका सत् शेष रहता है। वह न शून्य होता है, न आकारयुक्त होता है, न दृश्य होता है, न दर्शनयुक्त होता है। उसमें ये भूत तथा पदार्थोंके समूह नहीं होते - केवल सत् अनन्तरूपमें अवस्थित रहता है। वह ऐसा अद्भुत तत्त्व होता है कि जिसके स्वरूपका निर्देश नहीं किया जा सकता। उसका स्वरूप पूर्णसे भी पूर्णतर होता है। वह न सत् होता है, न असत् और न सत् - असत् उभयात्मक ही । वह न भाव होता है, न अभाव ही। वह दृश्यरहित चिन्मात्र होता है। वह अनन्त, अजर, शिवस्वरूप, आदि - मध्य - अन्तरहित तथा निरामय (निरुपद्रव) होता है।।''

''चित्तं कारणमर्थानां तस्मिन्सति जगत्त्रयम्।

तस्मिन् क्षीणे जगत्क्षीणं तत् चिकित्स्यं प्रयत्नतः ।।''

(महोपनिषत् ३.२१)

''बाह्य और अभ्यन्तर विषयोंका हेतु चित्त है। उसीके कारण जागरादि अवस्थात्रय तथा अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवरूप ग्राह्य - ग्रहण - ग्राहक-- भाव संज्ञक तीनों प्रकारके जगत् की स्थिति है। चित्तके क्षीण होनेपर जगत् क्षीण हो जाता है। अतएव प्रयत्नपूर्वक चित्तकी चिकित्सा ही कर्त्तव्य है।।''

''चित्तस्य हि प्रसादेन हित्वा कर्म शुभाशुभम्।
प्रसन्नात्माऽऽत्मनि स्थित्वा सुखमानन्त्यमश्नुते।।''

(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व १८७.३०)

''चित्त शुद्ध होनेपर वह शुभाशुभ कर्मोंसे अपना सम्बन्ध हटा कर प्रसन्नचित्त हो, आत्मस्वरूपमें स्थित हो जाता है अर्थात् अनात्मवस्तुओंसे विविक्त आत्ममात्र होकर अवशिष्ट रहता है और परमानन्दस्वरूप होता हुआ अनन्त आनन्दका अनुभव करता है।।''

सम्यग्दर्शनसम्पन्न कर्मोंसे निबद्ध नहीं होता। सम्यग्दर्शनविहीन संसारको प्राप्त होता है, अर्थात् जन्म -मृत्युरूप संसृतिचक्रसे मुक्त नहीं होता। -

''सम्यगदर्शनसम्पन्नः कर्मभिर्न निबद्ध्यते।
दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते।।''

(मनुस्मृति ६.७४)

रागद्वेषविनिर्मुक्त, समलोष्टाश्मकाञ्चन, दम्भ, अहङ्कार, पिशुनता और प्राणिहिंसासे वियुक्त, पूर्ण निःस्पृह, आत्मज्ञानगुणसम्पन्न यतिवर

मुनि मोक्षलाभ करते हैं। –

"रागद्वेषवियुक्तात्मा समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
प्राणिहिंसानिवृत्तश्च मुनिः स्यात्सर्वनिःस्पृहः।।
दम्भाहङ्कारनिर्मुक्तो हिंसापैशुन्यवर्जितः।
आत्मज्ञानगुणोपेतो यतिर्मोक्षमवाप्नुयात्।।"

(नारदपरिव्राजकोपनिषत् ३, ३४,३५)

प्रत्येक प्राणी मृत्युरहित जीवन, अज्ञानरहित विज्ञान तथा दुःख (ताप) - रहित आनन्द (सुख) चाहता है। इस प्रकार प्रत्येक जीवकी निसर्गसिद्ध चाहका विषय सच्चिदानन्द ही है। मृत्युग्रस्त शरीरादिमें अहन्ता तथा ममताके कारण ही उसे मृत्युका भय प्राप्त है। जड शरीरादिमें अहन्ता तथा ममताके कारण ही उसे मूर्खताका भय प्राप्त है। दुःखप्रद - दुःखरूप शरीरादिमें अहन्ता तथा ममताके कारण ही उसे दुःख प्राप्त है। सुषुप्तिमें मृत्युग्रस्त शरीरादिमें अहन्ता तथा ममताके अभावमें उसे मृत्युका भय अप्राप्त है तथा जडताग्रस्त शरीरादिमें अहन्ता तथा ममताके अभावमें उसे मूर्खताका भय अप्राप्त है एवम् दुःखप्रद - दुःखरूप शरीरादिमें अहन्ता तथा ममताके अभावके कारण उसे दुःख अप्राप्त है। अतः अन्तः - आराम, अन्तर्ज्योति तथा अन्तः सुख ही ब्रह्मनिर्वाण लाभ करनेमें समर्थ है। -

"योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति।।"

(श्रीमद्भगवद्गीता ५.२४)

प्रतिक्षण परिवर्तनशील दृश्य जगत्का द्रष्टा वर्तमानमें अपनी

विद्यमानताकी अनुभूतिके बलपर स्वयंकी नित्यता तथा चिद्रूपताका निर्णय कर सकता है। स्वयंकी परप्रेमास्पदताके बलपर प्रबुद्ध प्राणी स्वयंकी सुखरूपताका निर्णय कर सकता है।

"यथा तरङ्गकल्लोलैर्जलमेव स्फुरत्यलम्।
घटनाम्ना यथा पृथ्वी पटनाम्ना हि तन्तवः।।
जगन्नाम्ना चिदाभाति सर्वं ब्रह्मैव केवलम्।"
(योगशिखोपनिषत् ४. १७,१७१/२)

"सुवर्णाज्जायमानस्य सुवर्णत्वं च शाश्वतम्।
ब्रह्मणो जायमानस्य ब्रह्मत्वं तथा भवेत्।।"
(योगशिखोपनिषत् ४. ७)

आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि जैसे तरङ्गरूपसे जलकी, घट - कुड्यादिरूपसे मृत्तिकाकी, पटरूपसे तन्तुओंकी और सुवर्णसमुत्पन्न कटक, मुकुट, कुण्डलादिरूपसे सुवर्णकी अभिव्यक्ति और स्फूर्ति होती है, वैसे ही जगत् - रूपसे ब्रह्मकी ही अभिव्यक्ति और स्फूर्ति होती है।

"गृह्यमाणे घटे यद्वन्मृत्तिका भाति वै बलात्।।
वीक्ष्यमाणे प्रपञ्चे तु ब्रह्मैव भाति भासुरम्।"
(योगशिखोपनिषत् ४. १९,१९१/२)

"जिस प्रकार घटके ग्रहण करनेपर घटरूपसे मृत्तिका ही स्फुरित होती है, उसी प्रकार पृथिव्यादि भूतोंके सहित स्थावर - जङ्गम प्राणिरूप प्रपञ्चात्मक जगत्के वीक्षण करनेपर स्वप्रकाश अधिष्ठानात्मक उपादान कारण ब्रह्म ही परिलक्षित होता है।।"

उक्त तथ्य जहाँ औपनिषद सिद्धान्त है, वहाँ युक्तियुक्त भी है। जगत् भोग्य है। देहेन्द्रियप्राणान्त:करणरूप अन्तर्जगत् कर्त्ता - भोक्तारूप जीवके कर्म और भोगमें अधिकरण (आश्रय) तथा करण है। देवानुग्रहसम्प्राप्त प्राणस्पन्दनसहित स्थूल देह कर्म और भोगमें आश्रय और अधिकरणात्मक अधिष्ठानरूप है। देवानुग्रहसम्प्राप्त प्राणस्पन्दनयुक्त कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय और अन्त:करणात्मक सूक्ष्म शरीर जीवके कर्म और भोगमें करणरूप है।

इस प्रकार आधिभौतिक कार्यात्मक बाह्य जगत्‌की भोग्यरूपता और आध्यात्मिक तथा आधिदैविक अन्तर्जगत् की कर्म और भोगमें आश्रय और करणरूपता सिद्ध है। यह तथ्य "**अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम्। विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्।।**" (**श्रीमद्भगवद्गीता १८. १४**) और "**आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिण:**" (**कठोपनिषत् २.१.४**) के अनुशीलनसे सिद्ध है। सूक्ष्म विचार करनेपर बाह्य जगत्‌के तुल्य कार्यकरणात्मक अन्तर्जगत् की भी परार्थताके कारण भोग्यरूपता और दृश्यरूपता चरितार्थ है।

उक्त रीतिसे बाह्याभ्यन्तर्जगत् की परार्थता और दृश्यरूपताके कारण विकारता तथा कार्यरूपता चरितार्थ है। कार्यवर्गको अपने अतिरिक्त निमित्त और उपादान कारणकी अपेक्षा होती है। समग्र कार्यवर्गके निमित्त कारणको सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और विभु मानना अनिवार्य है। कार्यप्रपञ्चके उत्पादकका कार्यवर्गका पालक और संहारक होना भी अनिवार्य है। ऐसी स्थितिमें जगत्‌की उत्पत्ति - स्थिति और संहृतिचक्रके अनादि निर्वाहकरूप निमित्त कारणकी नित्यता भी चरितार्थ है। इस

प्रकार बाह्याभ्यन्तर समग्र दृश्यवर्गके निमित्तकारणकी नित्यता, विभुता, सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता सुनिश्चित है। अभिप्राय यह है कि **विभु सच्चित् सर्वेश्वर ही सर्व जगत्का निमित्तकारण सिद्ध है।**

घट, आभूषण और तरङ्गादिरूप उपादेयके मृत्तिका, सुवर्ण और जलादिरूप उपादानमें बहुभवनसामर्थ्य परिलक्षित है। साथ ही पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशमें उत्तरोत्तर सन्निकट निर्विशेषता भी सिद्ध है। पृथ्वीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रससहित गन्ध - सन्निहित है। जलमें शब्द, स्पर्श, रूप सहित रस - सन्निहित है। तेजमें शब्द, स्पर्शसहित रूप - सन्निहित है। वायुमें शब्दसहित स्पर्श - सन्निहित है। आकाशमें मात्र शब्दगुण सन्निहित है। तद्वत् मनःसंलग्न अहम् में **मध्यमा वाक्** सन्निहित है। बुद्धिसंज्ञक **महत् में पश्यन्ती वाक्** सन्निहित है। अव्यक्तरूपा **प्रकृतिमें परा वाक्** सन्निहित है। गन्धादिबीज अव्यक्त सर्वजगत् का परिणामोपादान सिद्ध है। अतएव अगन्ध, अरस, अरूप, अस्पर्श, अशब्द तथा बहुभवनसामर्थ्यसम्पन्न कूटस्थ विभु सत्संज्ञक ब्रह्मकी विवर्तोपादानता सिद्ध है। रज्जुसर्पादिका परिणामोपादान रज्जुके अज्ञान और विवर्तोपादान रज्जुके तुल्य यह तथ्य हृदयङ्गम करने योग्य है। मायावीके द्वारा विरचित मायिक चमत्कृतिका उपादान मायावीनिष्ठ माया और मायावी दोनों ही सिद्ध है। कोई भी कार्य उपादाननिष्ठ कार्यानुमेया कार्योत्पादिनी शक्तिका परिणाम और शक्तिके समाश्रयका विवर्त मान्य है। मृन्निष्ठ घटादिको उत्पन्न करनेवाली शक्तिका घटादि परिणाम और मृत्तिकाका विवर्त मान्य है।

उक्त रीतिसे विभु सच्चित् सर्वाधिष्ठानस्वरूप ब्रह्म ही सर्व

जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। विभु सच्चित् की आत्मरूपता सिद्ध है और आत्माकी परप्रेमास्पदता सिद्ध है। परप्रमास्पदकी परमानन्दरूपता सिद्ध है।

उक्त रीतिसे वेदान्तवेद्य सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मात्मतत्त्व ही सर्व जगत्का अभिन्न निमित्तोपादान सिद्ध है।

वैशेषिक, साङ्ख्यादिक प्रस्थानमें वस्तुकृत परिच्छेदशून्य सर्वात्मतत्त्वकी स्वीकृति नहीं है। नित्य और विभुरूप केवल काल और देशकृत परिच्छेदशून्य वस्तुतक ही जिनकी गति है, निस्सन्देह उनका प्रस्थान अपूर्ण है। उनका वह नित्य और विभुतत्त्व वस्तुकृतपरिच्छेदशून्य वस्तुका व्याप्य अवश्य सिद्ध होता है। व्याप्यकी स्थूलता, सावयवता और अनित्यता भी चरितार्थ है । अनित्यकी कार्यरूपता और कार्यकी स्वेतर निमित्तोपादानकारणसापेक्षता भी सिद्ध है। अतएव **कूटस्थ सत्यकी अनुपलब्धि ही इतर प्रस्थानकी समुपलब्धि है।**

वैशेषिकादिसम्मत परमाणुओंका परस्पर संश्लेष और विश्लेष उनकी सावयवता, नश्वरता सिद्ध करता है, न कि चरम कारणता । प्रकृतिको जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण माननेवाले प्रकृतिपरिणामवादी साङ्ख्यादिसम्मत त्रिगुण प्रलयकालिक संश्लेष और सर्गकालिक विश्लेषके कारण कूटस्थ सत्य सिद्ध नहीं होते। प्रपञ्चको ब्रह्मपरिणाम स्वीकार करनेपर दुग्धसे दधितुल्य परिणाम अङ्गीकार करनेपर ब्रह्मकी नश्वरता सिद्ध होती है। तत्त्वान्तरसंज्ञक विजातीय कार्योत्पादनके अनन्तर महदादिके तुल्य ब्रह्मको शेष माननेपर ब्रह्मकी महदादितुल्य जडता सिद्ध होती है।

४. वेदागम - परिशीलन

चार्वाकादि प्रस्थानसम्मत प्रत्यक्षप्रमाणाधिगत पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा इनके सङ्घात वृक्षादिकी परार्थता, सावयवता, कार्यरूपता चरितार्थ है। जगत् को पुद्गलसमुदायरूप माननेपर भी अतीन्द्रिय परमाणुओंका संश्लेष और विश्लेष पुद्गलको कूटस्थ सत्य नहीं सिद्ध होने देता।

इस प्रकार संयोग, आरम्भ, परिणाम और तारतम्यज सङ्घातरूप विवर्तवादमें वस्तुकृतपरिच्छेदशून्य वस्तुका अदर्शन होनेके कारण दर्शनकी अपूर्णता ही सिद्ध है। अतएव वेदान्तवेद्य सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वाधिष्ठान, सर्वनियामक सर्वेश्वर ही जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादान-कारण सिद्ध होता है।

उक्त रीतिसे जगत्की ब्रह्मरूपता सिद्ध है। ब्रह्मलक्षणसे सर्वथा भिन्न जगत् की असच्चिदानन्दरूपता इसकी शुक्तिरजत, नभनैल्यादितुल्य ब्रह्मविवर्ततामें हेतु है।

इस ग्रन्थमें बौद्धदर्शन और वेदान्त - सम्मत उभयपक्षको निश्छलभावसे प्रस्तुत किया गया है। दोनोंमें सामञ्जस्यके स्वरूपको प्रस्तुतकर विगानके बलाबलको चित्रित किया गया है। सत्यसहिष्णुताकी क्रमिक अभिव्यक्तिमें प्रस्थानभेदका तात्पर्य सन्निहित है। औपनिषदसिद्धान्तके उत्कर्षको हृदयङ्गम करनेकी भावनासे बौद्धागमादिका अनुशीलन भी अपेक्षित है।

''सम्यङ्निदर्शनं नाम प्रत्यक्षं प्रकृतेस्तथा।
गुणतत्त्वान्यथैतानि निर्गुणोऽन्यस्तथा भवेत्।।
न त्वेवं वर्तमानानामावृत्तिर्विद्यते पुनः।

विद्यतेऽक्षरभावत्वादपरं परमव्ययम्।।
पश्यैरन्नैकमतयो न सम्यक् तेषु दर्शनम्।
ते व्यक्तं प्रतिपद्यन्ते पुनः पुनररिन्दम।।"
(महाभारत - शान्तिपर्व ३०६. ४६ - ४८)

"प्रकृति तथा पुरुषका प्रत्यक्ष - दर्शन ही सम्यग्दर्शन है। ये जो गुणमय तत्त्व हैं, इनसे भिन्न परम पुरुष परमात्मा निर्गुण है।।"

"इस दर्शनके अनुसार ज्ञान प्राप्त करनेवालोंकी इस संसारमें पुनरावृत्ति नहीं होती, कारण यह है कि वे अविनाशी - अक्षरभावको प्राप्त हो जाते हैं। अतएव परमात्मस्वरूप निर्विकार परब्रह्मरूपमें ही उनकी स्थिति होती है।।"

"शत्रुदमन नरेश ! जिनकी बुद्धि नानात्वका दर्शन करती है, उन्हें सम्यग्ज्ञानकी समुपलब्धि नहीं होती। ऐसे व्यक्तियोंको पुनः - पुनःदेह-धारण करना पड़ता है।।"

"निराशता निर्भयता नित्यता समता ज्ञता।
निरीहता निष्क्रियता सौम्यता निर्विकल्पता।।
धृतिर्मैत्री मनस्तुष्टिर्मृदुता मृदुभाषिता।
हेयोपादेयनिर्मुक्ते ज्ञे तिष्ठन्त्यपवासनम्।।"
(महोपनिषत् ६.२९,३०)

"वासनाविहीन तथा हेयोपादेयसे मुक्त ज्ञानीमें संसारकी ओरसे निराशा, निर्भयता, नित्यता, समता, अभिज्ञता, निष्कामता, सौम्यता, निर्विकल्पता, धृति, मैत्री, सन्तोष, मृदुता तथा मृदुभाषिता प्रभृति गुण विद्यमान रहते हैं।।"

"स्वाध्यायैर्व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।।"
(मनुस्मृतिः २.२८)

"स्वाध्याय, व्रत, होम, जप, त्रैविद्या, दान, पुत्र तथा महायज्ञों और यज्ञोंके द्वारा ब्रह्मसाक्षात्कारके युक्त श .को सुसंस्कृत किया जाता है।।"

उक्त वचनके अनुसार **ब्राह्मीतनुकी** सिद्धि होती है।

सगुण सर्वेश्वरकी समुपासनाके उपयुक्त भाव शरीरको **अन्तश्चिन्तित** वपु कहते हैं। तत्त्वज्ञोंके शरीरको **विद्वत्काय** कहते हैं। योगशिखोपनिषत् १.५६ - ५८ के अनुसार प्राण तथा अपानके समायोगसे चन्द्र तथा सूर्यकी एकता होनेपर समुद्भूत अग्निके प्रभावसे सप्तधातुमय शरीर रञ्जित होकर आधि तथा व्याधिको दग्धकर मरणभयसे रहित दग्धकर्पूरवत् परमाकाशरूप होता है। **योगतत्त्वोपनिषत्** ८४ - १०३ के अनुसार शरीरमें आपादमस्तक पृथ्वी, पानी, प्रकाश, पवन, आकाश के क्रमशः लं, वं, रं, यं, हं -बीज तथा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव - संज्ञक अनुग्राहक देवोंकी धारणासे पृथ्वी, पानी, प्रकाश, पवनके आघातसे रहित आकाशकल्प सिद्धदेहकी समुपलब्धि होती है।

पादसे जानुपर्यन्त लकारसमन्वित चतुरस्र, पीतवर्ण पृथ्वीका स्थान है। वहाँ वायुको सन्निहितकर चतुर्मुख, चतुर्भुज हिरण्मय ब्रह्माका शनैः - शनैः पञ्चघटिकापर्यन्त ध्यान करनेपर पृथ्वीपर विजय सम्भव है। पृथिवीपर विजय प्राप्त करनेवाले योगीका भूमियोगसे मरण असम्भव है।

जानुसे पायुपर्यन्त वकारसमन्वित अर्धचन्द्राकार श्वेतवर्ण जलका स्थान है। वहाँ वायुको सन्निहितकर शुद्धस्फटिसदृश चतुर्भुज किरीटी पीताम्बरधर अच्युत नारायणका शनैः - शनैः पञ्चघटिकापर्यन्त ध्यान करनेपर जलपर विजय सम्भव है। जलपर विजय प्राप्त करनेवाले योगीका जलके योगसे मरण असम्भव है।

पायुसे हृदयपर्यन्त रकारसमन्वित त्रिकोण रक्तवर्ण तेजका स्थान है। वहाँ वायुको सन्निहितकर भस्मोद्धूलित तरुणादित्यसदृश सुप्रसन्न रुद्रका शनैः - शनैः पञ्चघटिकापर्यन्त ध्यान करनेपर अग्नि पर विजय सम्भव है। अग्निपर विजय प्राप्त करनेवाले योगीका अग्निके योगसे मरण असम्भव है।

हृदससे भ्रूमध्यपर्यन्त षट्कोण कृष्णवर्ण यकारसमन्वित वायुका स्थान है। वहाँ वायुको सन्निहितकर विश्वतोमुख सर्वज्ञ ईश्वरका शनैः - शनैः पञ्चघटिकापर्यन्त ध्यान करनेपर वायुपर विजय सम्भव है। वायुपर विजय प्राप्त करनेवाले योगीका वायुके योगसे मरण असम्भव है।

भ्रूमध्यसे मूर्धापर्यन्त वृत्ताकार धूम्रवर्ण हकाराक्षरसमन्वित आकाशका स्थान है। वहाँ वायुको सन्निहितकर हकारस्थ बालेन्दुमौलि पञ्चवक्र, दशबाहु, त्रिलोचन, सर्वायुधधृत, सर्वभूषणभूषित, उमार्धविग्रह, बिन्दुरूप, सौम्य सदाशिवका शनैः - शनैः पञ्चघटिकापर्यन्त ध्यान करनेपर आकाशगमन और अत्यन्त सुखोपलब्धि सम्भव है।

महाप्रलयपर्यन्त दृढशरीरकी समुपलब्धि तथा प्रलयदशामें अविकम्पस्थिति उक्त धारणासे सुनिश्चित है।

द्वन्द्वोंकी प्राप्ति और व्याप्ति अहङ्कृतिपर्यन्त है। सुषुप्तिमें

अहङ्कृतिके विलयसे द्वन्द्वोंकी प्राप्ति और व्याप्ति असम्भव है। शीत - उष्ण, भूख - प्यास, राग - द्वेषादि द्वन्द्वोंकी तथा विविध रोगोंकी प्राप्ति अहङ्कारके कारण ही सम्भव है। जागरदशामें योगधारणापूर्वक अहङ्कारके शमनसे, देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणके संयमसे एवम् पञ्चभूतात्मक शरीरके शोधनसे ज्वरादि व्याधियोंका, कामक्रोधादि आधियोंका और अविद्याका शमन सुनिश्चित है। योगिदेह आकाशकल्प और आत्मधारणाके अमोघ प्रभावसे आकाशसे भी निर्मल होता है। योगी इच्छानुरूप देव, गन्धर्वादि विविध शरीर तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवम् स्थूलातिस्थूल रूप धारण करनेमें समर्थ होता है। उसकी सर्वत्र अप्रत्याहतगति होती है। हठयोगके अमोघ प्रभावसे देहगत मारक सामग्रियोंका दाह करनेमें समर्थ होनेके कारण उसका शरीर चिरस्थायी होता है। -

"अहङ्कृतिर्यदा यस्य नष्टा भवति तस्य वै।।
देहस्त्वपि भवेन्नष्टो व्याधयश्चापि किं पुनः।
जलाग्निशस्त्रखातादिबाधा कस्य भविष्यति।।
यदा यदा परिक्षीणा पुष्टा चाहङ्कृतिर्भवेत्।
तमनेनास्य नश्यन्ति प्रवर्तन्ते रुगादयः।।
कारणेन विना कार्यं न कदाचन विद्यते।
अहङ्कारं विना तद्वद्देहे दुःखं कथं भवेत्।।
शरीरेण जिताः सर्वे शरीरं योगिभिर्जितम्।
तत्कथं कुरुते तेषां सुखदुःखादिकं फलम्।।
इन्द्रियाणिमनोबुद्धिः कामक्रोधादिकं जितम्।
तेनैव विजितं सर्वं नासौ केनापि बाध्यते।।
महाभूतानि तत्त्वानि संहृतानि क्रमेण च।
सप्तधातुमयो देहो दग्धो योगाग्निना शनैः।।

देवैरपि न लक्ष्येत योगिदेहो महाबलः।
भेदबन्धविनिर्मुक्तो नानाशक्तिधरः परः।।
यथाकाशस्तथा देह आकाशादपि निर्मलः।
सूक्ष्मातिसूक्ष्मतरो दृश्यः स्थूतात्स्थूलो जडाजडः।।
इच्छारूपो हि योगीन्द्रः स्वतन्त्रस्त्वजरामरः।
क्रीडते त्रिषु लोकेषु लीलया यत्रकुत्रचित्।।
अचिन्त्यशक्तिमान् योगी नानारूपाणि धारयेत्।
संहरेच्च पुनस्तानि स्वेच्छया विजितेन्द्रियः।।
नासौ मरणमाप्नोति पुनर्योगबलेन तु।
हठेन मृत एवासौ मृतस्य मरणं कुतः।।
(योगशिखोपनिषत् १. ३४ - ४५)

न्यायदर्शन तथा योगदर्शनने भी सिद्धकायका समारोहपूर्वक वर्णन किया है।

भावनोपनिषदादिके अनुसार परापूजा तथा मानसी सेवा एवम् श्रवण, कीर्तनादि नवधा भक्तिसे सिद्धि और सद्गतिका मार्ग प्रशस्त होता है एवम् सर्वहितकारक बल एवम् वेगका उद्रेक होता है।

बौद्धोंके महायानप्रस्थानमें उत्तरोत्तर उत्कृष्ट निर्माणकाय (कायव्यूहसम्पन्न योगीका व्यूहकाय), सम्भोगकाय (प्रकाशव्यूहसम्पन्न योगीका प्रकाशकाय)और धर्मकाय (स्वभावकाय)का वर्णन प्राप्त है।-

"शिल्प - जन्म - महाबोधि - सदा - निर्वाण - दर्शनैः।
बुद्धनिर्माणकायोऽयं महामायो विमोचने।।"
(महायानसूत्रालङ्कार ९.६४)

"शिल्प, जन्म, अभिसम्बोधि (बोध; ज्ञान), निर्वाणकी शिक्षा

देकर विश्वकल्याणके लिए ही बुद्धने इस शरीरको धारण किया था। परार्थसिद्धिके लिए अपेक्षित विविध शरीरोंकी संरचना इस निर्माणकायके द्वारा ही सम्भव है।।''

निर्माणकायकी अपेक्षा महासत्त्वके सम्पूर्ण लक्षणोंसे मण्डित अमेय, अनन्त और प्रकाशात्मक सम्भोगकाय अत्यन्त सूक्ष्म है। बोधिसत्त्व परसम्भोगकायको धारण करते हैं। स्वयं बुद्ध स्वसम्भोगकायको गम्भीर ज्ञानोपदेशके लिए धारण करते हैं। लङ्कावतारसूत्रमें इसे **'निष्यन्द बुद्ध'** कहा गया है। इस शरीरकी सुलभतासे विमलता, समता, वस्तुगत विचित्रता तथा यथोचित कर्त्तव्यताके विज्ञानसे चित्त समन्वित रहता है।

''समः सूक्ष्मश्च तच्छिष्टः कायः स्वाभाविको मतः।
सम्भोग - विभुता - हेर्तुयथेष्टं भोगदर्शने।।''
(महायानसूत्रालङ्कार १.६२)

''धर्मकाय सब बुद्धोंके लिए सम होता है। यह दुर्विज्ञेय होनेसे सूक्ष्म तथा निर्माणकाय और सम्भोगकायसे सम्बद्ध होता है। सम्भोग और विभुत्वमें हेतु होनेके कारण अभिमत कार्यसिद्धिरूप सम्भोगका साधक होता है।।''

''धर्मतो बुद्धा द्रष्टव्या धर्मकाया हि नायकाः।
धर्मता चाप्यविज्ञेया न सा शक्या विजानितुम्।।''
(माध्यमिकवृत्ति पृ.४४८)

''बुद्धको धर्मताके रूपमें अनुभव करना चाहिये। धर्मकाय - समलङ्कृत बुद्ध लोकनायक हैं। वह धर्मता अविज्ञेय है, उसे जान पाना अशक्य है।।''

"स एवानास्रवो धातुरचिन्त्यः कुशलो ध्रुवः ।
सुखो विमुक्तिकायोऽसौ धर्माख्योऽयं महामुने ।।"
(त्रिंशिका ३०)

"तथागत अनास्रव, अचिन्त्यधातु, कुशल, ध्रुव, धर्म, सुखरूप तथा विमुक्तिकाय मान्य है ।।"

बौद्धप्रस्थानगत निर्माणकाय, सम्भोगकाय, धर्मकाय वैदिक प्रस्थानगत क्रमशः विराट् कल्प, हिरण्यगर्भकल्प और सर्वेश्वरकल्प मान्य है ।

बौद्धप्रस्थानमें धर्मकायसे उत्कृष्ट सहजकायका भी उल्लेख है, जो कि वैदिक प्रस्थानगत तुरीयात्मक ब्रह्मकल्प है ।

साधनप्रक्रममें काय, वाक्, प्राण और चित्तके शोधनकी प्रक्रिया योग है । समष्टिसे व्यष्टिकी तादात्म्यापत्ति शुद्धि है । अभिप्राय यह है कि पिण्ड और ब्रह्माण्डकी, लिङ्ग (सूक्ष्मदेह, तैजस) और सूत्रात्माकी, स्वाप (सुषुप्ति, प्राज्ञ) और अव्याकृतकी, स्वप्रकाश (तुरीय) और चिदात्माकी एकता योग है । योगकी सिद्धि शुद्धि है ।-

"पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं लिङ्गसूत्रात्मनोरपि ।
स्वापाव्याकृतयोरैक्यं स्वप्रकाशचिदात्मनोः ।।"
(योगकुण्डल्युपनिषत् २.८१)

कायके शोधनसे निर्माणकायकी सिद्धि सम्भव है । वाक्के शोधनसे सम्भोगकायकी सिद्धि सम्भव है । प्राणके शोधनसे धर्मकायकी सिद्धि सम्भव है । चित्तके शोधनसे सहजकायकी सिद्धि सम्भव है । शोधितचित्त चित्तरिक्त प्रत्यक् - चेतनस्वरूप होता है । - "चेतनं

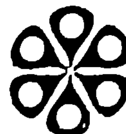
चित्तरिक्तं हि प्रत्यक् चेतनमुच्यते'' (सन्यासोपनिषत् ४५)

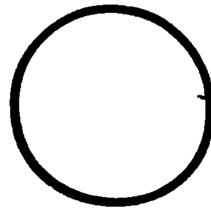
स्थूल, सूक्ष्म और कारण देहके शोधनसे कालचक्रके नियमनकी शक्ति समुदित होती है।

वैदिक प्रस्थानमें **'कालो मायात्मसम्बन्धः' (सूतसंहिता २, ज्ञानयोगखण्ड २.१०)** के अनुसार माया - शक्ति तथा शिवात्म-तत्त्वका सम्बन्ध **काल** है। हीनयानकी अपेक्षा अति अर्वाचीन महायानमें सर्वधर्मोंकी निःस्वभावतारूप **शून्यता प्रज्ञासंज्ञक चक्र** है। सर्व प्राणियोंके सर्वविध कल्याणकी भावना **करुणा** है। शून्यता तथा करुणाकी सहस्थिति **काल** है। उसीको आद्यन्तशून्य **आदि बुद्ध** कहते हैं। संवृति - संज्ञक जगत्का यह व्यावहारिकरूप उसीकी शक्ति है। प्रज्ञा, करुणा तथा संवृति - शक्ति **कालचक्र** है। शक्ति तथा शक्तिमान् में अभेदके कारण कालचक्र **अद्वय** है। प्रवाहरूपसे प्रचलित रहनेके कारण कालचक्र **अक्षर** है। -

**''अनादिनिधनो बुद्ध आदिबुद्धो निरन्वयः।
करुणाशून्यतामूर्तिः कालः संवृतिरूपिणी।।
शून्यता चक्रमित्युक्तं कालचक्रोऽद्वयोऽव्ययः।।''**

बौद्धतन्त्रगत यह **कालचक्रयान** वैदिक तन्त्रकी अनुकृतिमात्र है। कृतज्ञतापूर्ण प्रशस्त अनुकृति शिष्यत्व है। अकृज्ञतापूर्ण प्रकारान्तर अभिव्यक्ति प्रच्छन्नता है। विद्वेषपूर्ण विकृतिबहुल प्रकारान्तर अभिव्यक्ति पिशाचानुकृति है।





५. शून्यवाद

सत्यसहिष्णुताकी क्रमिक अभिव्यक्ति दर्शनोंकी प्रशस्ति है। उन्नत अधिकारसम्पदाकी अभिव्यक्तिके बिना चरम सत्यको सहसा हृदयङ्गम कर पाना असम्भव है। अतएव परोवरीयक्रमसे सत्यार्थप्रकाश कर्त्तव्य है। दर्शनसन्दर्भमें बौद्धागमके वैदिकों तथा जैनोंके अनुसार निम्नलिखित चार विभाग द्रष्टव्य हैं। -

(१) **वैभाषिक** –बाह्यार्थ प्रत्यक्षवाद

(२) **सौत्रान्तिक** - बाह्यार्थानुमेयवाद

(३) **योगाचार** - विज्ञानवाद

(४) **माध्यमिक** - शून्यवाद

वैभाषिक प्रस्थानानुसार बाह्यार्थप्रत्यक्ष सत्य है। सौत्रान्तिक प्रस्थानके अनुसार चित्तरूपी दर्पणपर प्रतिफलित बिम्बात्मक क्षणिक बाह्यार्थ अनुमेय है। योगाचारप्रस्थानके अनुसार लाञ्छित चित्तात्मक विज्ञानका विलासभूत विवर्त ही भौतिक बाह्यार्थ जगत् है। माध्यमिक प्रस्थानके अनुसार बाह्यार्थ सहित अभ्यन्तर विज्ञानात्मक चित्त परमार्थ सत् शून्यपर्यवसायी असत् है। हीनयानसे सम्बद्ध वैभाषिक और महायानसे सम्बद्ध सौत्रान्तिक, योगाचार तथा माध्यमिक हैं।

५. शून्यवाद

वैभाषिक संसार और निर्वाण दोनेंको सत्य स्वीकार करते हैं।

सौत्रान्तिक संसारको सत्य और निर्वाणको असत्य मानते हैं।

योगाचार संसारको असत्य और निर्वाणको सत्य मानते हैं।

माध्यमिक संसार और निर्वाण दोनोंको असत्य मानते हैं।

''मुख्यो माध्यमिको विवर्तमखिलं शून्यस्य मेने जगत्
योगाचारमते तु सन्ति मतयस्तासां विवर्तोऽखिलः।
अर्थोऽस्ति क्षणिकस्त्वसावनुमिती बुद्ध्येति सौत्रान्तिकः
प्रत्यक्षं क्षणभङ्गुरं च सकलं वैभाषिको भाषते।।''

''मुख्य माध्यमिक शून्यवादीके मतमें जगत् की सत्ता प्रातिभासिक है और शून्यकी सत्ता पारमार्थिक है। सम्पूर्ण जगत् शून्यका विवर्त है। योगाचार विज्ञानवादियोंके मतमें सम्पूर्ण जगत् चित्तसंज्ञक विज्ञानका विवर्त है। चित्तपटपर चित्रित, दर्पणमें प्रतिफलित दृश्यानुभूतिसे बाह्यार्थकी अनुमिति होती है, ऐसा सौत्रान्तिकोंका पक्ष है। बाह्यार्थ क्षणभङ्गुर किन्तु प्रत्यक्ष है, ऐसा वैभाषिक मानते हैं।। ''

बौद्धागमके अनुसार लोकदृष्टि अविद्याच्छन्न है। उसके निराकरणके लिए क्रमिक सत्यका प्रकाश आवश्यक है। लोकदृष्टिका अपवाद कर अशेष प्रपञ्चका उपशम **शून्य** है।

''असतो मा सद्गमय'' (**बृहदारण्यकोपनिषत् १.३.२८**) के अनुसार अनित्यात्मक असत् से नित्यात्मक सत्, अचित् से चित् और दुःखसे आनन्दकी ओर चित्तप्रवण **वैदिक दर्शन** है। किन्तु बौद्धागमके अनुसार क्षणिक सत्यसे पूर्ण असत्यकी ओर प्रस्थान होता है।

हीनयानी आचार्य तथा जैन और वैदिकोंने '**शून्य**' - शब्दका

अर्थ सर्वत्र सकल सत्ताका उच्छेद या अभाव किया है। छान्दोग्योपनिषत् में भी **"तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायत।।"** (६.२.१) 'महाप्रलयमें सजातीय, विजातीय, स्वगतभेद - शून्य असत् ही था, उस असत् से महासर्गकि आरम्भमें सत् - संज्ञक जगत् उत्पन्न हुआ' की उक्तिसे उक्त तथ्यको उपस्थापित कर **"कथमसतः सज्जायेत "** (६.२.२), **"असन्नेव स भवति । असद् ब्रह्मेति वेद चेत्।"** (तैत्तिरीयोपनिषत् २.६) की उक्तिसे उक्त पक्षका निराकरण किया गया है।

परन्तु वैदिकोंको स्वपक्षमें जब असत् से सत् की समुत्पत्ति मान्य है, तब असत् अभावात्मक न मान्य होकर अव्याकृतात्मक ही सिद्ध है। उसीकी प्रशंसा श्रुत है। - **"असद्वा इदमग्र आसीत्।। ततो वै सदजायत।। तदात्मानं स्वयमकुरुत।।" (तैत्तिरीयोपनिषत् २.७), "तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियत" (बृहदारण्यकोपनिषत् १.४. ७), "अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद। सन्तमेनं ततो विदुः।" (तैत्तिरीयोपनिषत् २.६)**

साङ्ख्यसिद्धान्तके परिशीलनसे ऐसा परिलक्षित होता है कि उन्हें कार्य - कारणमें तादात्म्य अभिमत है। माध्यमिकमतकी दृष्टिसे जगत् को स्वभाव, परभाव, भाव, अभाव - संज्ञक चतुष्कोटिविनिर्मुक्त अनिर्वचनीय - निःस्वभाव मानकर उसके मूल तथागतसंज्ञक शून्यको भी चतुष्कोटिविनिर्मुक्त अनिर्वचनीय माना गया है। परन्तु इस तथ्यको 'कारणके अनुरूप कार्य ' कहकर व्यक्त किया गया है। -

५. शून्यवाद

"स्वभावं परभावं च भावं चाभावमेव च।
ये पश्यन्ति न पश्यन्ति ते तत्त्वं बुद्धशासने।।"
(माध्यमिककारिका १५.६)

"तथागतो यत्स्वभावस्तत्स्वभावमिदं जगत्।
तथागतो निःस्वभावो निःस्वभावमिदं जगत्।।"
(माध्यमिककारिका २२.६)

अन्तयुक्तके मूलमें अन्तयुक्त, जातिके मूलमें जाति, क्रियाके मूलमें क्रिया और गुणके मूलमें गुणकी मान्यता आत्माश्रय, अन्योन्याश्रय, चक्रक तथा अनवस्था - संज्ञक दोषचतुष्टय-दूषित होनेके कारण अन्तयुक्तादिके मूलमें अनन्तादिकी वैदिकी मान्यताके तुल्य कार्यविलक्षण कारणके सिद्धान्तको स्वीकारकर व्यावहारिक धरातलपर जगत् को सत् मानकर जगत् - कारण शून्यको जगत् से विलक्षण प्रतिषेधात्मक असत् माना गया है।

"अनिरोधमनुत्पादमनुच्छेदमशाश्वतम्।
अनेकार्थमनानार्थमनागममनिर्गमम् ।।"
(माध्यमिककारिका १.१)

"शून्य नाशरहित, उत्पत्तिहीन, लयरहित, नित्यत्वविहीन, एकत्वहीन, नानार्थविहीन, आगमनरहित, निर्गमविहीन है।।"

हीनयानने मध्यम प्रतिपत् - रूप मध्यममार्गको आचारके विषयमें ही अङ्गीकार किया है। परन्तु माध्यमिकोंने मध्यम प्रतिपदाके सिद्धान्तको तत्त्वमीमांसाके सन्दर्भमें भी अङ्गीकार किया है। इस मतमें वास्तव

वस्तु ऐकान्तिक सत् अथवा ऐकान्तिक असत् नहीं है, प्रत्युत शून्यसंज्ञक मध्यवर्ती ही है। -

"अस्तीति नास्तीति उभेऽपि अन्ता
शुद्धी अशुद्धीति उभेऽहि अन्ता।
तस्मादुभे अन्त विवर्जयित्वा मध्ये
हि स्थानं प्रकरोति पण्डितः।।"(समाधिराजसूत्र)

सत् और असत् अर्थात् भाव तथा अभाव - परस्पर सापेक्ष होनेके कारण वास्तव वस्तु अमान्य हैं। परमार्थानुमापक शून्यकी निरपेक्षता, निरालम्बता, निःस्वभावता, अपरोक्षता और अद्वयता ही उसकी शिवता अर्थात् निर्दोषता है।

शीत - उष्ण, भूख - प्यास, लाभ - अलाभ, ज्ञान - ज्ञेय, वाचक - वाच्य, सुख - दुःखादि - द्वन्द्वात्मक प्रपञ्चकी वास्तविकताके विभ्रमरूप विज्ञानसे अभिमतमें राग, अनभिमतमें द्वेष समुत्पन्न होता है। राग, द्वेषात्मक क्लेशके कारण कर्मोंमें प्रवृत्ति होती है। कर्मोंमें प्रवृत्तिसे सुख - दुःखादिकी अनुभूति, वासनाकी परिपुष्टि और उत्क्रमण तथा पुनर्भवकी प्राप्तिरूप भवचक्रकी व्याप्ति होती है। भवबन्धनिरोधके लिए द्वन्द्वात्मक प्रपञ्चकी अथवा अर्थावबोधक शब्द - संज्ञक प्रपञ्चकी असत्तारूप सर्वधर्मनिरात्मताका निर्णय और कर्म तथा कामके मूलभूत सर्वसङ्कल्पका परित्याग अपेक्षित है।

प्रपञ्चका अर्थ शब्द है। शब्दके द्वारा ही अर्थका प्रपञ्चन (प्रकाशन) होता है। - "**प्रपञ्चो हि वाक्। प्रपञ्चयत्यर्थानिति कृत्वा वाग्भिरव्याहृतमित्यर्थः।**" (माध्यमिकवृत्ति पृ. ३७३)

५. शून्यवाद

'**शून्य** ' - शब्द प्रतिपाद्य नहीं है। अतएव '**अशब्द**' अर्थात् '**अनक्षर**' है।

'**शून्य** ' - निर्विकल्प अर्थात् चित्तके प्रचारसे रहित है। अतएव अचिन्त्य अर्थात् अज्ञेय है। - '**परमार्थसत्यं कतमत् ? यत्र ज्ञानस्याप्यप्रचारः। कः पुनर्वादोऽक्षराणामिति**' (**माध्यमिकवृत्ति पृ. ३७४**)- 'जिस परमार्थसत्यमें ज्ञानका प्रचार नहीं है, उसमें अक्षरोंका प्रचार कैसे हो सकता है ?'

'**शून्य** ' - नाना अर्थोंसे विरहित अर्थात् परमार्थतः सर्वधर्मोंका अत्यन्त अनुत्पाद होनेसे **अनानार्थ** है। - '**नात्र किञ्चित् पररमार्थतो नानाकरणं तत्। कस्माद्धेतोः ? परमार्थतोऽत्यन्तानुत्पादत्वात् सर्वधर्माणाम्** ' (**आर्यसत्यद्वयावतारसूत्र, माध्यमिकवृत्ति पृ. ३७५**)

इस ससन्दर्भमें विमलहृदय बुद्धकी यह गाथा प्रसिद्ध है - ''हे काम! मैं तुमहारे मूलको जानता हूँ, तुम्हारा मूल सङ्कल्प है। अब मैं तुम्हारा सङ्कल्प ही नहीं करूँगा, जिससे तुम्हारी उत्पत्ति न होगी।''

इस सन्दर्भमें वैदिकार्य मङ्किका उद्घोष दो श्लोकोंके माध्यमसे स्मरणीय है । -

''जानामि काम त्वां चैव यच्च किञ्चित् प्रियं तव।
तवाहं प्रियमन्विच्छन्नात्मन्युपलभे सुखम्।।"
(महाभारत- शान्तिपर्व १७७.२४)

''काम! मैं तुझे अच्छी तरह जानता हूँ और जो कुछ तुझे प्रिय लगता है, उससे भी परिचित हूँ। चिरकालसे तेरा प्रिय करनेकी चेष्टा

करता चला आ रहा हूँ, परन्तु कभी मेरे मनमें सुखका अनुभव नहीं हुआ।।"

"काम जानामि ते मूलं सङ्कल्पात् किल जायसे।
न त्वं सङ्कल्पयिष्यामि समूला न भविष्यसि।।"
(महाभारत - शान्तिपर्व १७७.२५)

"काम! मैं तेरे मूलको जानता हूँ, निश्चय ही तू सङ्कल्पसे समुत्पन्न होता है। अब मैं तेरा सङ्कल्प ही नहीं करूँगा, जिससे तू समूल नष्ट हो जायगा।।"

"सङ्कल्पाज्जायते कामः सेव्यमानो विवर्धते।
यदा प्राज्ञो विरमते तदा सद्यः प्रणश्यति।।"
(महाभारतशान्तिपर्व १६३.८, ८.१/२)

"**काम** सङ्कल्पसे उत्पन्न होता है। उसका सेवन किया जाय तो बढ़ता है और जब बुद्धिमान् पुरुष उससे विरक्त हो जाता है, तब वह तत्काल विनष्ट हो जाता है।।"

"काममूलमिदं जन्म कामः पापस्य कारणम् ।
यशःक्षयकरः कामस्तस्मात्तं परिवर्जयेत् ।।"
(नारदपुराण-पूर्व० ३४.५६)

"काम इस जन्मका मूल कारण है, काम पाप करनेमें हेतु है और काम यशका नाश करनेवाला है, अतः कामको त्याग देना चाहिए।"

"यद्यत्सम्भाव्यते लोके सर्वसङ्कल्पसम्भ्रमः" (तेजोबिन्दूपनिषत् ५.४९)- 'लोकमें जो - जो सम्भूत होता है, वह सब सङ्कल्पसिद्ध विभ्रममात्र है।'

५. शून्यवाद

उक्त रीतिसे कर्म और क्लेशके क्षयसे मोक्ष सुनिश्चित है। कर्म और क्लेशका मूल सङ्कल्प और विकल्प है। प्रपञ्चकी सत्ताके विज्ञानसे सङ्कल्प सम्भव है। प्रपञ्चकी असत्तारूप शून्यके विज्ञानसे सङ्कल्पादिका निरोध सम्भव है। -

''कर्मक्लेशक्षयान्मोक्षः कर्मक्लेशा विकल्पतः।।
ते प्रपञ्चात् प्रपञ्चस्तु- शून्यतायां निरुध्यते ।''
(माध्यमिककारिका १८.५)

''सत्यत्वेन जगद्भानं संसारस्य प्रवर्तकम् ।।
असत्यत्वेन भानं तु संसारस्य निवर्तकम् ।''
(आत्मोपनिषत् ४.४.१/२)

''सत्यरूप से जगत् का भान संसारका प्रवर्त्तक है, परन्तु असत्यरूपसे जगत् का भान संसारका निवर्तक है ।।''

माध्यमिक आचार्योंने निर्विशेष वस्तुका निर्वचन असम्भव होनेसे उस परम तत्त्वको अस्ति (विद्यमान), नास्ति (अविद्यमान), तदुभय (अस्ति - नास्ति - युग्मरूप), नोभय (न च अस्ति, न च नास्ति; अस्ति तथा नास्तिका निषेध) - संज्ञक चतुष्कोटि - विनिर्मुक्त - **'शून्य'** - संज्ञक स्वीकार किया है। -

'न सन्नासन् सदसन्न चाप्यनुभयात्मकम्।
चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं तत्त्वं माध्यमिका विदुः।।'
(बोधिचर्यावतारपञ्जिका पृष्ठ १७४)

उक्त रीतिसे माध्यमिकोंके मतमें सर्वथा अभाववाचक शून्य नहीं है। शाखाचन्द्रन्यायसे लोकसंवृतिका अनुगमनकर निःस्वभाव परमार्थ

सत्योन्मुख लोकसत्यके प्रस्थापनसे लोकदृष्टिका अपहरण और परमार्थ सत्यका अवतरण तथागतसिद्धान्त है। लोकदर्शनका आलम्बन लिये बिना शून्यदर्शनका आलम्बन दुर्गृहीत सर्प या दुष्प्रसाधित विद्याके तुल्य घातक है।

"उपायभूतं व्यवहारसत्यमुपेयभूतं परमार्थ सत्यम्" (मध्यमकावतार ६. ८०) - 'व्यवहारसत्य उपायभूत है और परमार्थसत्य उपेयभूत है।'

"न च सुभूते संस्कृतव्यतिरेकेण असंस्कृतं शक्यं प्रज्ञापयितुम्" - "संस्कृतसंज्ञक व्यवहारके बिना असंस्कृतसंज्ञक परमार्थका प्रज्ञापन शक्य नहीं है।"

जिस स्वभावका तथागत होता है, उसी स्वभावका यह जगत् भी होता है। तथागत भाव, अभाव, उभय, अनुभयसे विलक्षण अतएव निःस्वभाव है। उसे शून्य, अशून्य, शून्याशून्य (उभय) और न शून्य, न अशून्य (अनुभय) मानना प्रमाद है। परन्तु उक्त वादको आत्मसात् करनेके लिए उसे शून्यवादसे अभिहित करनेकी प्रथा सर्वथा युक्त है।

हेतुफलपरम्परापरिज्ञान अर्थात् किसी वस्तुके उत्पन्न होनेपर अन्य वस्तुकी उत्पत्ति **प्रतीत्यसमुत्पाद** है। प्रतीत्यसमुत्पाद, शून्यता, उपादायप्रज्ञप्ति, प्रतिपत्, मध्यमा - समानार्थक हैं। **"हेतुप्रत्ययापेक्षो भावानामुत्पादः प्रतीत्यसमुत्पादः" (माध्य० शा०)** - दुःख, जन्म, धर्माधर्म, प्रवृत्ति, तृष्णा, संस्कार और अविद्या तथा फलमूल पुष्प, नाल, पत्र, अङ्कुर, बीजादि - परम्परापरिबोध प्रतीत्यसमुत्पाद है। अर्थात्

५. शून्यवाद

कारण - कार्य - भावरूप धर्मावगति प्रतीत्यसमुत्पाद है। यह हेतुप्रत्ययापेक्ष भावोत्पादरूप है। प्रधान और सहायक हेतुओंसे अथवा प्रत्येक कारणरूप हेतु और कारणसमुदायरूप प्रत्ययसे निष्पन्न कार्यका अवबोधक है।-

यः प्रतीत्यसमुत्पादः शून्यतां तां प्रचक्षते।
सा प्रज्ञप्तिरुपादाय प्रतिपत्सैव मध्यमा।।
(मध्यमक का० २४.१८)

द्वे सत्ये समुपाश्रित्य बुद्धानां धर्मदेशना।
लोकसंवृतिसत्यं च सत्यं च परमार्थतः।।
(मध्यमक का० २४.८)

शून्यमिति न वक्तव्यमशून्यमिति वा भवेत्।
उभयं नोभयं चेति प्रज्ञप्त्यर्थं तु कथ्यते।।
तथागतो यत्स्वभावस्तत्स्वभावमिदं जगत्।
तथागतो निःस्वभावो निःस्वभावमिदं जगत्।।
(म० का० २२.११,६)

व्यवहारमनाश्रित्य परमार्थो न देश्यते।
परमार्थमनागम्य निर्वाणं नाधिगम्यते।।
विनाशयति दुर्दृष्टा शून्यतामन्दमेधसम्।
सर्पो वा दुर्गृहीतो विद्या वा दुष्प्रसाधिता।।
(म० का० २४. १०,११)

न सन्नासन्न सदसन्न चाप्यनुभयात्मकम्।
चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं तत्त्वं माध्यमिका विदुः।।
(बोधिचर्यावतारपञ्जिका पृष्ठ १७४)

५. शून्यवाद

शून्य वज्रवत् दृढ, अखण्डनीय, अछेद्य, अभेद्य और अविनाशी है। अत: दोनोंकी एकरूपता मान्य है। -

''दृढं सारमसौऽशीर्णमच्छेद्याभेद्यलक्षणम्।
अदाहि अविनाशि च शून्यता वज्रमुच्यते।।''
(वज्रशेखर पृ. २३)

बौद्धागमसम्मत वज्रोपम लोकोत्तर शून्यसंज्ञक यह परम तत्त्व आकाशतुल्य अप्रतिष्ठ (निराधार), व्यापक, लक्षणवर्जित वज्रज्ञान है।

''अप्रतिष्ठं यथाकाशं व्यापि लक्षणवर्जितम्।
इदं तत् परमं तत्त्वं वज्रज्ञानमनुत्तरम्।।''
(ज्ञानसिद्धि १.४७)

व्यावहारिक तथा पारमार्थिक - दृष्टिसे सत्यके दो भेद हैं। परमार्थ तत्त्व शून्यसे अभिहित होनेपर भी शून्य, अशून्य, उभय, अनुभय ही मान्य है। वस्तुत: नि:स्वभाव शून्यके अनुरूप ही जगत् नि:स्वभाव मान्य है।

उक्त रीतिसे बौद्धागमका माध्यमिक प्रस्थान तत्त्वनिर्णयके सन्दर्भमें शून्यको सत्य, असत्य, उभय, अनुभयरूप चतुष्कोटिविनिर्मुक्त निरुपाख्य मानता है। उसे कार्यकारणकी शून्यता ही अभीष्ट है। - **''न सन्नासन्न सदसन् धर्मो निर्वर्तते यदा'' (मध्यमक.पृ.२), ''सदसत्पक्षनिर्मुक्तमुभयं नोभयं न च ''(लङ्कावतारसूत्र १०.८८०), ''सन्न निवर्तते, विद्यमानत्वात्। असन्नापि, अविद्यमानत्वात्। सदसन्नापि , परस्परविरुद्धस्यैकार्थस्याभावात्। उभयपक्षाभिहितं दोषाच्च। ''**

निर्वाणसिद्धिका मार्ग नैरात्म्यवाद है। वस्तुत: विशुद्ध शून्यता ही विशुद्ध आत्मता है। बुद्धोंने आत्ममहात्मताको शून्यस्थितिके द्वारा ही प्राप्त किया हैं। -

"शून्यतायां विशुद्धायां नैरात्म्यान्मार्गलाभत:।
बुद्धा: शुद्धात्मलाभित्वाद्गता आत्ममहात्मताम्।।"
(महायानसूत्रालङ्कार ९.२३)

लोकानुग्रहतत्पर लोकनाथने अज्ञाननिद्रामें निमग्न और स्वप्न देखनेवालोंको निर्वाणके रूपमें अनिर्वाणकी ही देशना (उपदेश) दी है। वस्तुत: उनका यह प्रयास आकाशके द्वारा डाली गयी ग्रन्थिका आकाशके द्वारा मोचन करनेके तुल्य है। -

"अनिर्वाणं हि निर्वाणं लोकनाथेन देशितम्।
आकाशेन कृतो ग्रन्थिराकाशेनैव मोचित:।।"
(माध्यमिककारिकावृत्ति पृ.५४०)

परमार्थ न सत् है, न असत्; न तथा है, न अन्यथा; न इसका उदय होता है, न व्यय; न इसकी हानि होती है, न वृद्धि; न यह विशुद्ध होता है, न अविशुद्ध ही। परमार्थ अद्वयार्थ है। परिकल्पित और परतन्त्र परिनिष्पन्न लक्षणवश यह असत् नहीं है। परिनिष्पन्न परिकल्पित और परतन्त्र नहीं है, अतएव वह तथा नहीं है। परिनिष्पन्न उससे अन्य नहीं है, अत: वह अन्यथा नहीं है। धर्मधातुरूप परमार्थ अनभिसंस्कृत है, अतएव उसका उदय, अस्त नहीं होता। संक्लेशके निरोध और व्यवदानके उत्पादकी दशामें यह एकरस रहता है, अत:वृद्धि - ह्राससे रहित है। आगन्तुक उपक्लेश विरहके कारण परमार्थ सत् विशुद्ध होता है।

संसर्गस्वभावके कारण अविशुद्ध होता है। आत्मा अस्तित्वहीन है। भ्रमसंक्षयमात्र मोक्ष है। न संसारका अस्तित्व है, न निर्वाणका ही। दोनोंका नैरात्म्य ही बौद्धागमसिद्धान्त है। तथापि यह नियम है कि जो शुभ कर्म करते हुए मोक्षकी भावना करते हैं, उन्हें जन्मक्षयसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। -

"न चान्तरं किञ्चन विद्यतेऽनयोः
सदर्थवृत्त्या शमजन्मनोरिह।
तथापि जन्मक्षयतो विधीयते
शमस्यलाभः शुभकर्मकारिणाम्।।"
(महायानसूत्रालङ्कार ६.५)

हेतु-समुद्भूत, सम्मिलित - समुत्पादक एवम् निरोधसंज्ञक नाशोन्मुख वस्तुका नाम **धर्म** है। धर्म वस्तुतः निःस्वभाव हैं। अतएव उनकी उत्पत्ति नहीं है। वे अनुत्पन्न हैं, अतएव उनका निरोध नहीं है। उत्पाद और निरोधशून्य होनेसे आदिशान्त हैं। आदिशान्त होनेसे प्रकृति-परिनिर्वृत (स्वभावसे निर्वाणरूप) हैं।-

"निःस्वभावतया सिद्धा उत्तरोत्तरनिश्रयाः।
अनुत्पादोऽनिरोधश्चादिशान्तिः परिनिर्वृतिः।।"
(महायानसूत्रालङ्कार ११.५१)

प्राप्तका प्रतिषेध शाश्वत नियम है। अप्राप्तका प्रतिषेध अमान्य है। भावस्वभावको स्वीकारकर उसका प्रतिषेध करनेपर अभावदर्शन प्रसक्त होता है। तैमिरिकको उपलब्ध केश, जालादिका वितैमिरिक प्रतिषेध करता है। इस प्रकार भ्रमसिद्ध अस्तिका अभ्रमसिद्ध प्रतिषेध

यथार्थ नहीं होता। भावोंके अस्तित्व - नास्तित्वकी परिकल्पना शाश्वतग्रह, अस्तिवाद है। अथवा उच्छेदवाद नास्तिवाद है। तत्त्वज्ञ विचक्षण अस्ति, नास्तिवादका आश्रय नहीं लेते। -

''अस्तीति शाश्वतग्राहो नास्तीत्युच्छेददर्शनम्।
तस्मादस्तित्वनास्तित्वे नाश्रीयेत विचक्षण:।।"
(मध्यमककारिका १५.१०)

उक्त रीतिसे शाश्वतसिद्धान्त और उच्छेदमतसे निर्मुक्त सौगतसम्मत तत्त्व है। - **''शाश्वतोच्छेदनिर्मुक्तं तत्त्वं सौगतसम्मतम्'' (अद्वयवज्रसङ्ग्रह पृ.६३)**

मोक्ष सकल कल्पनासे व्यावृत्त है। शून्य कोई तत्त्व नहीं है। अतएव शून्यतामें भावाभिनिवेश सर्वथा त्याज्य है। **मिथ्या दृष्टियोंका निस्सरण (निरसन) शून्यता है।** शून्यको तत्त्व समझनेवाले असाध्य हैं। -

''शून्यता सर्वदृष्टीनां प्रोक्ता नि:सरणं जिनै:।
येषां तु शून्यतादृष्टिस्तानसध्यान् बभाषिरे।।"
(मध्यमककारिका १३.८)

बौद्धागम भावरूप कार्यदर्शनसे कारणका अनुमान करता है। उसे बिना हेतुके कार्योत्पत्ति अमान्य है। परन्तु कार्योत्पत्तिकालमें कारणाभाव होनेसे कार्यकारणकी सहस्थिति असिद्ध है। अत: स्वत:, परत: और उभयत: उत्पत्ति असिद्ध है। -

''न स्वतो नापि परतो न द्वाभ्यां नाप्यहेतुत:।
उत्पन्ना जातु विद्यन्ते भावा: क्वचन केचन।।"
(मध्यमकमूल १.१, माध्यमिक कारिका पृष्ठ१२)

५. शून्यवाद

कार्यकी उत्पत्ति कारणसे होती है। कार्य कारणसे अभिन्न नहीं होता। अङ्कुरावस्थामें बीजकी अनुपलब्धिसे यह तथ्य सिद्ध है। यदि कार्यकालमें कारणकी विद्यमानता स्वीकार करें तो कारणकी नित्यता मान्य होगी। तब शाश्वतवादकी प्रसक्ति अनिवार्य होगी। जिससे कर्मफलका अभाव सिद्ध होगा। कर्मफलके अभावसे विविध दोषोंकी प्रसक्ति होगी। अतएव कार्यकारणमें अभेद असिद्ध है।

क्रियाके द्वारा कर्मसम्पादक कर्त्ता स्वतन्त्र मान्य है। जो कर्ताकी तीव्र इच्छाका विषय (ईप्सिततम) हो, वह कर्म है - **'कर्तुरीप्सिततमं कर्म ' (पाणिनि. १.४.४९)।**

कारकको क्रियायुक्त मानना अनिवार्य है। अन्यथा कारक व्यपदेश ही असम्भव है। क्रियायुक्त सद्रूप कारकमें क्रियायुक्त सद्रूप कर्मका कर्तृत्व सम्भव नहीं। - **'सद्भूतस्य क्रिया नास्ति, कर्म च स्यादकर्तृकम्' (माध्यमिककारिका ८.२)**

क्रियाहीन असद्रूप कारकमें क्रियारहित कर्मका कर्तृत्व सम्भव नहीं। ऐसी स्थितिमें कारककी सिद्धि ही सम्भव नहीं। कर्म करनेके लिए कारकमें कारक व्यपदेशके लिए अनिवार्य क्रियाके अतिरिक्त क्रियान्तर अपेक्षित है। उसके बिना उससे कर्मसम्पादन सम्भव नहीं। कारकनिरपेक्ष कर्म सम्भव नहीं। अतएव सद्रूप कारकसे कर्मसम्पादन सम्भव नहीं। कर्मसंज्ञाकी सार्थकताके लिए कर्मका क्रियायुक्त होना अनिवार्य है। क्रियान्तरके अभावमें कारककी अकर्मकता अनिवार्य है। क्रियारहित कारक और कर्म निर्हेतुक होंगे। असद्भूत कारकसे असद्भूत कर्मका सम्पादन सम्भव नहीं। अहेतुवादको अङ्गीकार करते ही

कार्यकारणभाव, क्रिया, कर्ता, करण सभी आरोपित होंगे। क्रियादिके अभावमें धर्माधर्मादिका अभाव होगा। धर्मादिके अभावमें इष्टानिष्ट फलोंका अभाव होगा। ऐसी स्थितिमें लौकिक, अलौकिक साधनसोपान निरर्थक होंगे। सदसत् उभयरूप कारकसे उभयरूप कर्मोंकी सिद्धि भी परस्पर विरोधके कारण सम्भव नहीं। समानवाचोयुक्तिसे सद्रूप कर्तासे असत्कर्म, असद्रूप कर्तासे सद्रूप कर्म भी सम्भव नहीं। क्षणिकवादके अनुसार बीज क्षणिक है। उसमें अङ्कुर, काण्ड, नाल, पत्रादि सजातीय फलविशेषके उत्पादनका सामर्थ्य है। अग्नि आदिसे अनष्ट बीज अङ्कुरादिमें हेतु होकर निरुद्ध होता है।

न्यायनयरसिक ऐसा मानते हैं कि सजातीय फलविशेषका पक्षधर होना उचित नहीं। ऐसा माननेपर विजातीय सन्तानकी प्रवृत्ति सम्भव नहीं होगी। बीजतुल्य कुशल चित्तसे सजातीय कुशल सन्तान और अकुशल चित्तसे सजातीय अकुशल सन्तान माननेकी बाध्यता भी प्राप्त होगी। गति, योनि, वर्ण, बुद्धि, इन्द्रिय, बल, रूप, भोगादिकी विचित्रताकी सिद्धिके लिए कर्मोत्पत्तिके साथ सन्तानमें अविप्रणाश नामक विप्रयुक्तधर्मकी उत्पत्तिको स्वीकार करना आवश्यक है। यह धर्म निर्भुक्त ऋणपत्रके समान कर्ताका कर्मविपाकसे पुनः सम्बन्ध नहीं होने देता।

वस्तुतः कर्महेतु क्लेश निःस्वभाव है। अतएव कर्म, कर्ता, कर्मज फल भी निःस्वभाव हैं। अतएव कर्मोत्पत्ति सम्भव नहीं। कुशल और अकुशलके विपर्यासकी अपेक्षासे निष्पन्न निःस्वभाव कहा जाता है।

उक्त रीतिसे बीजाङ्कुरकी अभिन्नता अमान्य है। दोनोंकी भिन्नता

स्वीकार करनेपर बिना बीजके भी अङ्कुरोत्पत्ति मान्य होगी। ऐसी स्थितिमें अङ्कुरके अवस्थानकालमें बीज भी अनुच्छिन्न ही रहेगा। अतएव सत्कार्यवाद और उसके समस्त दोषोंकी प्राप्ति होगी।

इस प्रकार कार्य कारणसे अभिन्न नहीं है और उससे भिन्न भी नहीं है। अतएव कारण न उच्छिन्न है, न अनुच्छिन्न (शाश्वत)ही। -

"प्रतीत्य यद्यद्भवति नहि तावत्तदेव तत्।
न चान्यदपि तत्तस्मान्नोच्छिन्नं नापि शाश्वतम्।।"
(माध्यमिककारिका १८.१०)

कर्ता, कर्म, करणके तुल्य ही ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय; प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय; ध्याता, ध्यान, ध्येय; श्रोता, श्रवण, श्राव्य; स्प्रष्टा, स्पर्श, स्पृश्य; द्रष्टा , दर्शन और दृश्य; रसयिता, रसन, रस्य; घ्राता, घ्राण, घ्रेय - परस्पर सापेक्ष हैं। अतएव वास्तव सत्य नहीं हैं। इन तीनोंमें किसी एकको शेष दोसे निरपेक्ष माननेपर भी इन्हें सत्य सिद्ध कर पाना सम्भव नहीं।

निरपेक्ष तत्त्व अनपायी (अनश्वर) - स्वभाव मान्य है। वह वास्तव होनेके कारण विद्यमान सिद्ध है। वह किसीका समुत्पादक और किसीसे समुत्पन्न अमान्य है। वास्तवसत्ताविहीन स्वभावहीन शान्त मान्य है। प्रतीत्यसंज्ञक समुत्पाद और उसके निमित्तकी निःस्वभावता सिद्ध है। मृत्तिका और घट, बीज तथा अङ्कुर अर्थात् कारण और कार्य दोनों स्वभावहीन अर्थात् शान्त (आदिशान्त) हैं। - **'यया तु यत्प्रतीत्य बीजाख्यं कारणं भवति अङ्कुराख्यं कार्यं, तच्चोभयमपि शान्तं स्वभावरहितं प्रतीत्यसमुत्पन्नम्'(माध्यमिकवृत्ति पृष्ठ १६०),**

'सर्वस्य हि प्रतीत्यसमुत्पन्नस्य पदार्थस्य निःस्वभावता पारमार्थिकं रूपम्।' (बोधिचर्या पृ.३५४) -

"प्रतीत्य यद्यद्भवति तत्तच्छान्तं स्वभावतः।
तस्मादुत्पद्यमानं च शान्तमुत्पत्तिरेव तु।।"
(माध्यमिककारिका ७.१६)

जगत् शून्यपटपर अङ्कित विविध काल्पनिक गन्धर्वतुल्य भव्य तथा यक्षतुल्य भयङ्कर चित्र है। विचित्र चितेरा दर्शक जीव अज्ञतावश स्वयं इसके अवलोकनसे रागान्वित तथा भयभीत होता रहता है। आश्चर्य तो यह है कि इसकी रमणीयता भी भयङ्करतामें और इसका राग भी भयमें परिणत हो जाता है। मानो स्वयं द्वारा विरचित भयङ्कर यक्षके चित्रका अवलोकन कर चितेरा स्वयं ही भयभीत हो रहा हो। -

"यथा चित्रकरो रूपं यक्षस्याति भयङ्करम्।
समालिख्य स्वयं भीतः संसारेऽबुधस्तथा।।"
(महायानविंशक, श्लोक ८)

पङ्किलपथपर चलकर पङ्कमें निमग्न बालक जैसे स्वयंको उससे समुद्धृत नहीं कर पाता, वैसे ही अज्ञ प्राणी कल्पनापङ्कमें निमग्न स्वयंका उससे समुद्धार नहीं कर पाता। -

"स्वयं चलन् यथा पङ्के बालः कश्चिन्निमज्जति।
निमग्नाः कल्पनापङ्के सत्त्वास्तत उद्गमाक्षमाः।।"
(महायानविंशक, श्लोक २०)

अविद्या, मोह, विपर्यास तथा संवृति – पर्यायवाची शब्द हैं। अविद्याविरहित आर्य तत्त्वदर्शी होते हैं। उनकी दृष्टिका विषय ही

वस्तुका वास्तव स्वरूप होता है। अभिप्राय यह है कि अनारोपित तत्त्व होता है और आरोपित स्वभावातिरिक्त। -

"येनामलापश्यति शुद्धदृष्टिस्तत्त्वमित्येवमिहाप्यवैहि ।।"

(मध्यमकावतार ६. २९)

"तत्त्वेऽप्रतिपत्तिः मिथ्याप्रतिपत्तिरज्ञानं अविद्या" (आर्यशालिस्तम्बसूत्र), "संव्रियत आव्रियते यथाभूतपरिज्ञानं स्वभावावरणाद् आवृतप्रकाशनाच्चानयति संवृतिः। अविद्या ह्यसत्पदार्थस्वरूपारोपिका स्वभावदर्शनावरणात्मिका च सती संवृतिरुपपद्यते "(बोधि.पञ्जिका पृ० ३५२) के अनुसार अविद्या आवरणस्वभाव है। वह अन्यमें अन्यका आरोप कर देती है। जिस प्रकार कामल (पाण्डु) रोगके कारण रोगी श्वेतको पीत समझने लगता है, उसी प्रकार संवृतिरूपा अविद्या विद्यमान वस्तुका आवरण कर अविद्यमानको आरोपित करती है। -

"अभूतं ख्यापयत्यर्थं भूतमावृत्य वर्तते।
अविद्या जायमानेवकामलातङ्कवृत्तिवत्।।"

"प्रतीत्यसमुत्पन्नं वस्तुरूपं संवृतिरूपम्" (पृष्ठ ३५२) के अनुसार हेतु तथा प्रत्ययके द्वारा समुत्पन्न वस्तु **सांवृतिक** अर्थात् आविद्यक है। इन्द्रियग्राह्य नाम - रूप - कर्मादिको लौकिकसत्य, व्यावहारिकसत्य और सांवृतिक सत्य कहते हैं। घट, पट, स्त्री, पुत्र, सूर्य, चन्द्रादिको **'लोक संवृति'** या **'तथ्य संवृति'** कहते हैं। किञ्चित् कारणसे समुत्पन्न तथा निर्दोष इन्द्रियके द्वारा समुपलब्ध नील, पीतादि **लोक - सत्य** है। किञ्चित् - प्रत्यय - समुत्पन्न

तथा सदोष इन्द्रियके द्वारा समुपलब्ध मरुमरीचिकादि 'मिथ्या संवृति' है।

'**हेतु**' का अर्थ मुख्य कारण है। '**प्रत्यय** ' का अर्थ मुख्य कारणके अनुकूल सामग्री अर्थात् गौण कारण है।

धर्मोंकी धर्मता वस्तुकी अस्तिता है। वही उसका स्वरूप है।- "**या सा धर्माणां धर्मता सैव तत्स्वरूपम्।।**" धर्मता स्वभाव है। स्वभाव प्रकृति है। प्रकृति शून्यता है। शून्यता निःस्वभावता है। निःस्वभावता तथता है। तथता तथाभाव है। तथाभाव अविकारिता है। अविकारिता सदैव स्थायिता है। सदैव स्थायिता अनुत्पादात्मकता है। परनिरपेक्ष तथा अकृत्रिम होनेके कारण अग्न्यादिका अनुत्पाद ही उसका स्वभाव है।

परमार्थ अव्यवहार्य है। वह कर्ता, कर्म; ज्ञाता, ज्ञेय; विषयी, विषय - आदि व्यवहार - विरहित है। वह अज, अनिरुद्ध, अविशेष, अभिधानाभिधेयसे अतीत और अग्राह्य है।

संवृति व्यवहार है। व्यवहार सुख - दुःखादि द्वन्द्व है। जो कुछ सांवृतिक (व्यावहारिक) सत्यरूप सविशेष है, वह बुद्धिगम्य है। वास्तववस्तु परमार्थसत्य निर्विशेष है, वह बुद्धि और वाक् - दोनोंका अविषय है। -

" निवृत्तमभिधातव्यं निवृत्ते चित्तगोचरे।
अनुत्पन्ना निरुद्धा हि निर्वाणमिव धर्मता।।"
(माध्यमिककारिका १८.७)

तथापि परमार्थ सत्य "**प्रत्यात्म वेदनीय**", "**स्वसम्वेद्य** " अवश्य है। -

५. शून्यवाद

"तदेतदार्याणामेव स्वसंविदितस्वभावतया प्रत्यात्मवेद्यं परमार्थसत्यम्" (बोधिचर्या पृ. ३६७)

आक्षेप - सर्व वस्तुओंकी शून्यता अभिमत होनेके कारण शून्यको सिद्ध करनेके लिए प्रयुक्त तर्कप्रमाण भी शून्य ही सिद्ध होगा। अर्थात् निःसारसे निःसारकी सिद्धि मिथ्यासे मिथ्याकी सिद्धिके तुल्य सिद्ध होगी। अतएव शून्यकी सिद्धि अप्रामाणिक है।

समाधान - प्रमाणान्तरसे सिद्ध प्रमाण प्रमेय मान्य है, न कि प्रमाण। अतः भावोंकी वास्तविकताको सिद्ध करनेवाले प्रमाणोंकी प्रामाणिकता असिद्ध है।

प्रमाणोंको अग्निके समान स्वप्रकाश सिद्ध करना भी असङ्गत है।

प्रमेयसे प्रमाणसिद्धि मानना भी उचित नहीं। प्रमेयकी सिद्धि प्रमाणाधीन होती है। अतः प्रमाणसाधक प्रमेयकी प्रमाणसंज्ञा होगी, न कि प्रमेय।

संयोगवश अकस्मात् प्रमाणसिद्धि भी सम्भव नहीं।-

"नैव स्वतः प्रसिद्धिर्न परस्परतः प्रमाणैर्वा।
भवति न च प्रमेयैर्न चाप्यकस्तात् प्रमाणानाम्।।"
(विग्रहव्यावर्तनी कारिका ५२)

"प्रमाणोंकी प्रसिद्धि न स्वयंसे, न परस्पर, न प्रमाणोंसे, न प्रमेयोंसे और न अकस्मात् ही सम्भव है।।"

शून्यपक्षमें भावोंकी सत्यता शून्यरूप है। शुभ तथा अशुभ परिवर्तनविहीन एकरस नहीं हैं। कुयोग तथा सुयोगवश इनमें परिवर्तन सुनिश्चित है। निर्विकार, स्थिर तथा सत् ही नहीं, प्रत्युत बन्ध्यापुत्र,

आकाशकुसुम, शशशृङ्ग, मरुमरीचिका - आदि असत् तथा मिथ्या वस्तुओंके भी नाम होते हैं।

श्रीहरिभद्रविरचित '**अभिसमयालङ्कारालोक**' - सम्मत शून्यके बीस प्रकार निम्नतिखित हैं। -

(१) अध्यात्मशून्यता- (१) चाक्षुषज्ञान (चक्षुर्विज्ञानधातु), (२) श्रावण ज्ञान (श्रोत्रविज्ञान धातु), (३) घ्राणज़ ज्ञान (घ्राणविज्ञान धातु),(४) रासनज्ञान (जिह्वाविज्ञान धातु), (५) स्पर्शजज्ञान (कायविज्ञान धातु), (६) बाह्येन्द्रियाग्राह्य अभ्यन्तर वस्तुज्ञान (मनोविज्ञान धातु) - रूप षड्विधविज्ञानकी शून्यता है। हीनयानसम्मत नैरात्म्यवादके तुल्य महायानसम्म्त मानसक्रियाके मूलमें नियामक आत्माकी अमान्यता अध्यात्मशून्यता है।

(२)बहिर्धाशून्यता - अन्तर्जगत्के तुल्य बाह्येन्द्रिय ग्राह्य शब्दादिकी शून्यता महायानसम्मत बहिर्धाशून्यता है।

(३) अध्यात्मबहिर्धाशून्यता - अध्यात्म और बाह्य - उभयभेदकी अवास्तविकता अध्यात्मबहिर्धाशून्यता है।

(४) शून्यता-शून्यता - बाह्य अथवा अभ्यन्तर किसी वास्तव वस्तुका नाम शून्यता नहीं है। शून्यताकी शून्यता परम तत्त्व है।

(५)महाशून्यता - पूर्व, पश्चिमादि दिक् की शून्यता महाशून्यता है। दिशामें महा सन्निवेशके कारण महान् विशेषणसे शून्यता लक्षित की जाती है।

(६)परमार्थशून्यता - निर्वाणसंज्ञक परमार्थ विश्वप्रपञ्चसे विसंयोगमात्र है। अतः निर्वाणकी शून्यता परमार्थशून्यता है।

(७)संस्कृतशून्यता - लोकार्थक धातुकी दृष्टिसे जगत् त्रैधातुक अर्थात् तीन लोकोंमें विभक्त है। भौतिक और अभौतिक भेदसे जगत् दो प्रकारका है। भौतिक जगत् रूपधातु है। अभौतिक जगत् अरूपधातु है। भौतिकलोक वासनारूप कामनासे युक्त -''**कामधातु**'' और ''**निष्कामधातु**'' भेदसे दो प्रकारका है। स्पर्शेन्द्रियरूप कायेन्द्रियधातुमें निमग्न प्राणियोंमें (१) चक्षुर्धातु, (२) श्रोत्रधातु , (३) घ्राणधातु, (४) जिह्वाधातु,(५) कायधातु, (६) मनोधातु , (७) रूपधातु, (८) शब्दधातु, (९) गन्धधातु , (१०) रसधातु. (११) स्प्रष्टव्यधातु , (१२) धर्मधातु , (१३) चाक्षुषज्ञान (चक्षुर्विज्ञानधातु) , (१४) श्रावण ज्ञान (श्रोत्रविज्ञान धातु), (१५) घ्राणज ज्ञान (घ्राणविज्ञान धातु), (१६) रासनज्ञान (जिह्वाविज्ञान धातु), (१७) स्पर्शजज्ञान (कायविज्ञान धातु), (१८) बाह्येन्द्रियाग्राह्य अभ्यन्तर वस्तुज्ञान (मनोविज्ञान धातु)संज्ञक धातुओंकी विद्यमानता होती है। अरूपधातुमें निमग्न प्राणी चौदह धातुओंसे युक्त होता है। वे घ्राण और जिह्वासम्पन्न होनेपर भी गन्ध, गन्धविज्ञान तथा रस, रसविज्ञानसे रहित होते हैं। अरूपधातु अभौतिक है। उसमें मनोधातु, मनोविज्ञानधातु और धर्मधातुकी ही विद्यमानता होती है।

सर्वास्ति, योगाचार और स्थविर - सम्प्रदायानुसार संस्कृत और असंस्कृत - भेदसे धर्म मुख्यत: दो प्रकारके है। परस्परके सहयोगसे समुत्पन्न धर्म संस्कृत कहा जाता है- ''**सम्भूय - अन्योन्यमपेक्ष्यकृता:, जनिता इति संस्कृता:**''। संस्कृत धर्म हेतु (मुख्य कारण) - प्रत्यय (मुख्यहेतुके अनुकूल कारणसामग्री) से उत्पन्न होते हैं। अतएव अस्थायी,

अनित्य, गतिशील और रागादिमलरूप आस्रवसे संयुक्त होते हैं -" **संस्कृतं क्षणिकं यतः"** (अभिधर्मकोश ४.२)।

निमित्त - प्रत्ययसे समुत्पन्न संस्कृत पदार्थोंकी स्वरूपसे शून्यता संस्कृतशून्यता है।

(८) असंस्कृतशून्यता- हेतुप्रत्ययसे अनुत्पन्न धर्म असंस्कृत होते हैं। असंस्कृत पदार्थ उत्पादरहित, विनाशरहितादि धर्मोंसे युक्त होता है। परन्तु अनुत्पाद तथा अनिरोध भी नाममात्र हैं। इनकी कल्पना सापेक्ष है। संस्कृत और असंस्कृत दोनों निराधार, निरालम्ब अतएव शून्य हैं।

(९) अत्यन्तशून्यता - प्रत्येक 'अन्त' स्वभावशून्य होता है। शाश्वत (नित्य) प्रथम अन्त है। उच्छेद (विनाश) द्वितीय अन्त है। इनके मध्यमें इनमें भेद दर्शानेवाला कोई तत्त्व नहीं है। अतः इनका भी अपना कोई स्वरूप नहीं है।

(१०) अनवरागशून्यता - आदि, मध्य और अन्तकी कल्पना सापेक्ष है। अतएव वास्तवरूपशून्य हैं। आदिमानत्वकी कल्पना आदिहीनत्वकी कल्पनाके तुल्य है। परस्पर विरुद्ध आदि और अन्तकी शून्यता ही सिद्ध है।

(११)अनवकारशून्यता - बौद्धागमसिद्धान्तमें सर्वत्र सापेक्षकी शून्य संज्ञा है। क्रियारूप अपाकरणसापेक्ष अनपाकरण शून्यरूप है। 'अनवकार' - 'अनुपधिशेष निर्वाण' है।

(१२) प्रकृतिशून्यता - प्रकृतिका अर्थ स्वभाव है। स्वभाव अनुत्पाद और अविशिष्ट है। उसकी शून्यता प्रकृतिशून्यता है।

(१३) सर्वधर्मशून्यता- धर्मका अर्थ पदार्थ है। संस्कृत और

असंस्कृत द्विविध धर्म परस्परसापेक्ष होनेसे परमार्थ सत्तासे विहीन शून्यरूप है।

(१४) **लक्षणशून्यता** - वस्तुगत परिचायक सामान्य और विशेष स्वभावलक्षण है। यथा दाह, प्रकाश और रूप अग्निका लक्षण है। शैत्य तथा रस जलका लक्षण है। हेतु - प्रत्यय - समुत्पन्न होनेसे लक्षण शून्य।

(१५) **उपलम्भशून्यता** - भूत, भविष्य तथा वर्तमान - संज्ञक काल कल्पनामात्र होनेसे शून्य अर्थात् असिद्ध है।

(१६) **अभाव- स्वभाव - शून्यता** - अनेक धर्मोंके संयोगसे समुत्पन्न वस्तु सापेक्ष होनेके कारण शून्य अर्थात् असिद्ध मान्य है।

(१७)**भाव - शून्यता** - विषयसहित इनिद्रयरूप भूतसंज्ञक बाह्य जगत् **रूप** है। जिनसे विषयोंका निरूपण होता है, वे इन्द्रियाँ है। जो निरूपित होते हैं, वे विषय हैं।

जगत् नाम और रूपात्मक है। मन तथा मानसिक प्रवृत्तियोंकी साधारण संज्ञा **नाम** है। नामके वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञानरूप चार विभाग हैं। अहमात्मक **आलयविज्ञान**का प्रवाह आत्मा है। इदमात्मक विज्ञानप्रवाह **प्रवृत्तिविज्ञान** है। आलयविज्ञान और प्रवृत्तिविज्ञानका प्रवाह **विज्ञानस्कन्ध** है। विषयोंके आकारमें आनेपर यह **रूपस्कन्ध** कहलाता है। इनके अन्तर्गत इन्द्रियाँ भी हैं। जो भौतिक नहीं हैं। जब चित्तात्मक विज्ञानस्कन्ध विषयेन्द्रियरूप रूपस्कन्धके साथ मिलता है, तब चित्तपरिणामात्मक सुखदु:खादिकी अनुभूति होती है। सुखदु:खादिप्रतीति - प्रवाह (परम्परा) **वेदनास्कन्ध** है। सुखदु:खादि

चित्तके परिणाम हैं, अतएव चित्तके तुल्य ही इनकी भौतिकता असिद्ध है। घट, पट, नील, गौ आदि शब्दोंको व्यक्त करनेवाला संवित्प्रवाह **संज्ञास्कन्ध** है। घटादिनिष्ठ रूपाकृतिकी भौतिकता सिद्ध है। घटादिनाम चित्तकी विशेष विकृतिके कारण अमूर्त है। वेदनास्कन्धपर निर्भर रागद्वेषादि क्लेश, मदमानादि उपक्लेश और धर्माधर्म **संस्कारस्कन्ध** हैं। यह भी चैत्त है।

उक्त स्कन्धोंका निरोध निर्वाण है।

राशिसंज्ञक समुदायात्मक स्कन्ध स्वत:सिद्ध न होनेसे शून्य है।

(१८) अभाव - शून्यता – श्रीकमलशीलने तत्त्वसङ्ग्रह .ञ्जिकामें आकाशकी भावरूपताके प्रतिपादक वैभाषिकोंको बौद्ध माननेमें सकोच दर्शाया है।

भगवत्पाद श्रीशङ्कराचार्यमहाभागने ब्रह्मसूत्रभाष्य २.२में वैभाषिकसम्मत आवरणभावरूप आकाशका निराकरणकर उसकी भावरूपताका प्रतिपादन किया है। इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन बौद्ध आकाशको अवस्तुरूप मानते थे।

प्रतिसङ्ख्याका अर्थ प्रज्ञारूप ज्ञान है। प्रज्ञाके उदयसे सुलभ वैराग्यकी प्रगल्भताके प्रभावसे निबन्धक सास्रव धर्मोंका वियोगात्मक क्रमिक निरोध **प्रतिसङ्ख्यानिरोध** है - **“ प्रतिसङ्ख्यानिरोधो यो विसंयोग: पृथक् पृथक् ” (अभिधर्मकोष १.६)**

इस निरोधके अन्तर्गत निर्वाणका समावेश किया जाता है।

बिना प्रज्ञाके स्वाभाविकरूपसे सुलभ आस्रवरूप मलोंका निरोध अप्रतिसङ्ख्यानिरोध है। प्रतिसङ्ख्यासे क्षीण आस्रवरूप मलोंके उत्पन्न होनेकी सम्भावना बनी रहती है। अप्रतिसङ्ख्यानिरोधसे रागादिक्लेशोंकी

पुन: उत्पत्ति नहीं होती। अतएव साधक भवचक्रसे सदाके लिए मुक्तिलाभ कर लेता है।

वैभाषिकोंके मतमें आकाश, प्रतिसङ्ख्यानिरोध और अप्रतिसङ्ख्यानिरोध हेतुप्रत्ययरहित नित्य पदार्थ हैं। अतएव वैभाषिक अनेकार्थवादी सिद्ध होते हैं।

योगाचारमतमें अचल, संज्ञा - वेदना - निरोध और तथता - संज्ञक असंस्कृत धर्मोंकी सङ्ख्या तीन अतिरिक्त हैं।

(४)अचल - सुख -दु:ख - निरपेक्ष देवोपम मन:स्थिति अचल है। अचलका अर्थ सुख - दु:ख - भावनाका सर्वथा तिरस्काररूप उपेक्षा है।

(५) संज्ञा - वेदना - निरोध - यह निबन्धक मानस धर्मोंके अवशीभूत मन:स्थितिरूपा समापत्ति (निरोध) है।

आकाशसहित निरोध सांसारिक सत्यताके केवल अभावरूप होनेसे स्वभावरहित सत्ताहीन हैं।

(१९) स्वभाव - शून्यता - लोकप्रसिद्धिके अनुसार किसी भी वस्तुके स्वतन्त्र अनुत्पन्न रूपका नाम स्वभाव है। - '**अकृत्रिम: स्वभावो हि निरपेक्ष: परत्र च**' (१५.२), ''**इह स्वो भाव: स्वभाव:, इति यस्य पदार्थस्य यदात्मीयं रूपं तत्तस्य स्वभाव: व्यपदिश्यते। किं च यस्यात्मीयं यद् यस्य अकृत्रिमम्**' (प्रसन्नपदा पृ. २६२)। अग्निनिष्ठ उष्णता स्वभावसिद्ध है, परन्तु जलके लिए वह कृत्रिम (कृतक) है। इस लोकप्रसिद्धिका निराकरण श्रीनागार्जुनने किया है। उनके अनुसार मणि, इन्धन, आदित्य, घर्षणसे समुत्पन्न उष्णता हेतु - प्रत्यय - जन्य होनेसे कृत्रिम है। अत: स्वभाव और तद्वत् परभाव, भाव तथा अभावकी कल्पना अतथ्य होनेसे अमान्य है।

बौद्धसिद्धान्त और वेदान्त

५. शून्यवाद

बौद्धागमसिद्धान्तके अनुसार आर्योंके प्रातिभसंज्ञक अलौकिक ज्ञानात्मक दर्शनके द्वारा इसकी समुत्पत्ति सम्भव नहीं है। कारण यह है कि **ज्ञान या दर्शन वस्तुके यथार्थ स्वरूपके द्योतक हैं, न कि सत्तारहित पदार्थके अभिव्यञ्जक**। अतएव स्वभावकी शून्यता चरितार्थ है।

(२०) परभावशून्यता - वस्तुके वास्तव रूपकी विद्यमानता स्वतन्त्ररूपसे नित्य सिद्ध परम निरपेक्ष है। परभावरूप बाह्य हेतुसे इस स्वभावकी समुत्पत्ति सर्वथा तर्कशून्य असङ्गत है।

उक्त विवेचनमें शून्यताके आरम्भके सोलह प्रकार **'प्रज्ञापारमिता सूत्र'** में सन्निहित हैं। शेष चार प्रकार कालान्तरमें संलग्न किये गये हैं।

मरुजलादि प्रतिभास मृद्घटादि व्यवहारके लिए है। मृद्घटादि व्यवहार शून्यसंज्ञक परमार्थके लिए है। प्रतिभासके प्रतिषेधसे व्यवहारकी और व्यवहारके प्रतिषेधसे परमार्थकी सिद्धि सम्भव है। प्रतिभास व्यवहारमें और व्यवहार परमार्थमें समारोपित है। अनक्षरसंज्ञक परमार्थ देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणसे अतिक्रान्त अदृश्य, अग्राह्य, अगोचर, अविक्रिय और अवेद्य है। व्यवहार परमार्थका समारोपित स्वरूप है। अतः समारोपके समाश्रयसे परमार्थका श्रवण और उपदेश सम्भव है।-

"अनक्षरस्यातत्त्वस्य श्रुतिः का देशना च का।
श्रूयते देश्यते चापि समारोपादनक्षरः।।"

जो कुछ सापेक्ष है तथा व्यवहारसिद्धिकी दृष्टिसे कल्पित है, अथवा प्रातिभासिक है, वह सत्यातिरिक्त होनेसे शून्य अवश्य है।

शून्य अलक्षण, अनुत्पाद, असंस्कृत, अवाङ्मय , अनावृत तथा अनावरक, ज्ञानात्मक चित्त और अद्वयरूप है।-

५. शून्यवाद

"अलक्षणमनुत्पादमसंस्कृतमवाङ्मयम्।
आकाशं बोधिचित्तं च बोधिरद्वयलक्षणा।।"
(बोधिचर्या० पृ.४२१)

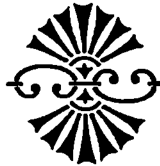
शून्य नाशरहित, उत्पत्तिहीन, लयरहित, नित्यत्वविहीन, एकत्वहीन, नानार्थविहीन, आगमनरहित, निर्गमविहीन है।-

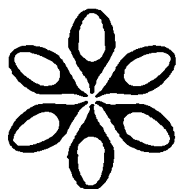
" अनिरोधमनुत्पादमनुच्छेदमशाश्वतम्।
अनेकार्थमनानार्थमनागममनिर्गमम्।।"
(माध्यमिककारिका १.१)

शून्यवादी प्रमाता, प्रमेय, प्रमाण तथा प्रमिति - इस तत्त्वचतुष्टयको परिकल्पित या अवस्तु मानते हैं।

हीनयानी, विज्ञानवादी, कुमारिल आदि मीमांसक, वैशेषिक, नैयायिक, पौराणिक, योगी, साङ्ख्यवादी और वेदान्ती - शून्यको अभाव मानकर उसका निराकरण करते हैं।

शून्यको अभावविलक्षण मानते हुए भी अवस्तु स्वीकार करना प्रकारान्तरसे शून्यको अभाव सिद्ध करना है। निर्विशेषताकी अवधि स्वप्रकाश अतएव अननुभाव्य तत्त्वको 'शून्य' मानना उसे वेदान्तवेद्य 'ब्रह्म' सिद्ध करना है ।





६ .ब्रह्मवाद

वेदान्तवेद्य ब्रह्म सर्वकारण, सर्वरूप और सर्वातीत है। अतएव मन तथा वाणीसे अतीत है। उसका विधि तथा निषेध - मुखसे प्रतिपादन विहित है। प्रश्न उठता है कि क्या वह वन्ध्यापुत्रादिके तुल्य नित्य अभावरूप होनेके कारण मन तथा वाणीका अविषय है, अथवा प्रपञ्चप्रतिषेधात्मक अभावरूप होनेके कारण मन तथा वाणीका अविषय है अथवा प्रपञ्चप्रतिषेधसे उपलक्षित सर्वातीत नित्य भावरूप होनेसे मन और वाणीका अविषय है? यदि वह वन्ध्यापुत्रादिके तुल्य नित्य अभावरूप होनेके कारण मन तथा वाणीका अविषय है; तब उसकी आत्मरूपता, विज्ञेयता तथा उपास्यता तथा तदर्थ अनेकों जन्मोंतक तप: स्वाध्याय तथा ध्यानादिकी आवश्यकता ही क्या है ? यदि वह प्रपञ्चप्रतिषेधात्मक अभावरूप है, तब प्रकारान्तरसे स्वत: बन्ध्यापुत्रादिवत् अभावरूप ही है, अतएव उसके समाश्रयसे अभ्युदय और नि:श्रेयसकी सिद्धि सर्वथा असम्भव ही है। पारिशेष्यन्यायसे प्रपञ्चप्रतिषेधसे उपलक्षित नित्य भावरूप सर्वातीत होनेसे वेदान्तवेद्य ब्रह्म मन और वाणीका अविषय है।

वेदान्तवेद्य ब्रह्मात्मतत्त्व उक्त हेतुसे मन और वाणीका अविषय है।

६. ब्रह्मवाद

तेजोबिन्दूपनिषत् ५.२२-२८के अनुसार शुभ, अशुभ; भय, अभय; बन्ध, मोक्ष; जन्म, मरण; त्वम्, अहम्; इदम्, तत्; अस्ति, नास्ति; कार्य, कारण; द्वैत, अद्वैत; दृश्य, दृक्; अन्तः, बहिः; पूर्णत्व, अपूर्णत्व - परस्पर सापेक्ष होनेके कारण एकके अभाव में दूसरेका अभाव सुनिश्चित है; अतः अतत्त्व हैं।

तद्वत् सत्यासत्यादि परस्पर विरुद्ध हैं । अतः दोनों में किसी एकका ही सिद्ध होना सम्भव है । तद्वत् शुभाशुभ, भयाभयादि द्वन्द्वोंमें दिन और रात्रिके तुल्य एकका पर्यवसान दूसरा सिद्ध है; अतः '**इदमित्थम्**' का निर्देश असम्भव है ।

उक्त रीतिसे द्वन्द्वोंकी परस्पर सापेक्षता, परस्पर विरुद्धता और पर्यवसित एकरूपताका चित्रण श्रौतप्रस्थानकी अपूर्वता है ।-

"बन्धत्वमपि चेन्मोक्षो बन्धाभावे क्व मोक्षता ।
मरणं यदि चेज्जन्म जन्माभावे मृतिर्न च ।।
त्वमित्यपि भवेच्चाहं त्वं नो चेदहमेव न ।
इदं यदि तदेवास्ति तदभावादिदं न च ।।
अस्तीति चेन्नास्ति तदा नास्ति चेदस्ति किञ्चन ।
कार्यं चेत्कारणं किञ्चित्कार्याभावे न कारणम् ।।
द्वैतं यदि तदाऽद्वैतं द्वैताभावे द्वयं न च ।
दृश्यं यदि दृगप्यस्ति दृश्याभावे दृगेव न ।।
अन्तर्यदि बहिः सत्यमन्ताभावे बहिर्न च ।
पूर्णत्वमस्ति चेत्किञ्चिदपूर्णत्वं प्रसज्यते ।।"

(तेजोबिन्दूपनिषत् ५.२४-२८)

६. ब्रह्मवाद

वास्तव सत्य अज निर्द्वन्द्व है। वह त्वम्, अहम्; इमे, इदम् ; दृष्यन्त और दार्ष्टान्तिकसे रहित है। -

"तस्मादेतत्क्वचिन्नास्ति त्वं चाहं वा इमे इदम्।
नास्ति दृष्टान्तिकं सत्ये नास्ति दार्ष्टान्तिकं ह्यजे।।"

(तेजोविन्दूपनिषत् ५.२९)

शुभ, अशुभ और भय, अभय - संज्ञक द्वन्द्वमें दिन तथा रात्रिके तुल्य एकका पर्यवसान दूसरेमें सुनिश्चित है। अत: द्वन्द्वघटककी तुल्यता तथा वास्तव वस्तुकी निर्द्वन्द्वता सिद्ध है। -

"शुभं यद्यशुभं विद्धि अशुभाच्छुभमिष्यते।
भंयं यद्यभयं विद्धि अभयाद्भयमापतेत्।।"

(तेजोविन्दूपनिषत् ५.२३)

अत: सत् के अतिरिक्त असत् का सिद्ध होना अथवा असत्के अतिरिक्त सत् का सिद्ध होना असम्भव है। -

"सत्यत्वमस्ति चेत् किञ्चिदसत्यं न च सम्भवेत्।
असत्यत्वं यदि भवेत् सत्यत्वं न घटिष्यति।।"

(तेजोबिन्दूपनिषत् ५.२२)

तथापि यह ध्यान रखना आवश्यक है कि कार्यके अभावमें वस्तुकी कारणसंज्ञा निरस्त होती है, न कि वस्तुका स्वरूप ही निरस्त होता है । यथा घटके अभावमें मिट्टीकी कारणसंज्ञा निरस्त होती है, न कि मिट्टीका स्वरूप ही निरस्त होता है ।

तैत्तिरीयोपनिषत् के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि इन्द्रियाँ अतीन्द्रिय हैं, मनमें भी मनकी गति नहीं है। -

६. ब्रह्मवाद

"यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह।"

(तैत्तिरीयोपनिषत् २.४)

इस तथ्यकी परिपुष्टिके लिए प्रथम चरणमें उसे निर्द्वन्द्व सिद्ध करनेकी भावनासे स्थूल तथा अणु, प्रत्यक्ष तथा अनुमेय, चेतन तथा जड, सत् तथा असत्, अहम् और इदम् - आदि द्वन्द्वोंसे विलक्षण कहा गया है। -

"आत्मा स्थूलो न चैवाणुर्न प्रत्यक्षो न चेतरः।
न चेतनो न च जडो चैवासन्न सन्मयः।
नाहं नान्यो न चैवेको न चानेकोऽद्वयोऽव्ययः।।"

(अन्नपूर्णोपनिषत् २.२०, २०.१/२)

वेदान्तवेद्य ब्रह्मात्मतत्त्वको त्रिकोटि - विनिर्मुक्त सिद्ध करनेके लिए न सत्, न असत्, न उभय कहा गया है। -

"न सन्नासन्न सदसदिति, तस्मात्तमः सञ्जायते" (सुबालोपनिषत् खण्ड१), "न सन्नासन्नासदसदित्येतन्निर्वाणानुशासनमिति वेदानुशासनम्।।" (सुबालोपनिषत् खण्ड२), 'न सन्नासन्न सदसत्' (महोपनिषत् २.६७)।

वेदान्तवेद्य ब्रह्मात्मतत्त्वको चतुष्कोटि - विनिर्मुक्त सिद्ध करनेके लिए **'न सत्, न असत्, न मध्य (सदसत् - उभय), न अन्त (अनुभय)'** कहा गया है। -

"न सन्नासन्न मध्यान्तं' (महोपनिषत् ५.४६)

"यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह।"

(तैत्तिरीयोपनिषत् २.४,९)

के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि करणगोचर तथा करणागोचर दो प्रकारका जगत् मान्य है। वेदान्तवेद्य ब्रह्मात्मतत्त्व द्विविध जगत् से अतीत है। उसकी शक्तिभूता माया और मायिक जगत् की भी त्रिकोटि-तद्वत्-द्विकोटि-विनिर्मुक्तता सिद्ध हैं- **"सविलासमूलाविद्या सर्वकार्योपाधिसमन्विता सदसद्विलक्षणानिर्वाच्या "** (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ३)। माया न सती है, न असती, न उभयरूपा सदसती ही - **"न सती , न असती, न सदसती"** (सर्वसारोपनिषत् ४), **"न सन्नासन्न सदसद्भिन्नाभिन्नं न चोभयम्। न सभागं न निर्भागं न चाप्युभयरूपम्। ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानं हेयं मिथ्यात्वकारणात् ।।"**(परब्रह्मोपनिषत् १), **"सदसद्विलक्षणा-निर्वाच्या लक्षणशून्या "** (त्रिपाद्विभूति- महानारायणोपनिषत् ३.१), **"नासद्रूपा न सद्रूपा माया नैवोभयात्मिका । अनिर्वाच्या ततो ज्ञेया भेदबुद्धिप्रदायिनी ।।"** (नारदपुराण-पूर्व० ३३.६१) **"आभासमात्रमेवेदं न सन्नासज्जगत्त्रयम्"** (अन्नपूर्णोपनिषत् ५.३३), **"सत्यासत्यं जगन्नास्ति "**(तेजोबिन्दूपनिषत् ६.७१)।

वेदान्तागम (वेदान्तशास्त्र) तत्त्वनिर्णयके सन्दर्भमें ब्रह्मको सत् और असत् - विलक्षण, वाणीका अविषय मानता है। - **"न सत्तन्नासदुच्यते"** (श्रीमद्भगवद्गीता १३.१२)। उसे कार्यकारणका मोक्ष (अपह्नव, मिथ्यात्व) ही मान्य है। **"भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्।।"** (श्रीमद्भगवद्गीता १३.३४), **" नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्"** (कठोपनिषत् १.२.१८), **"तस्मिंश्चिद्दर्पणे स्फारे समस्ता वस्तुदृष्टयः। इमास्ताः प्रतिबिम्बन्ति सरसीव तटद्रुमाः।।"**

(अन्नपूर्णोपनिषत् ४.७१), ''यत्रैष जगदाभासो दर्पणान्त:पुरं यथा। तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा कृतकृत्यो भवानघ।'' (अध्यात्मोपनिषत् १०), ''सिद्धान्तोऽध्यात्मशास्त्राणां सर्वापह्नव एव हि। नाविद्यास्तीह नो माया शान्तं ब्रह्मेदमक्लमम्।।'' (५.११२)। - ''प्राकृत प्रपञ्चरूप भूत और भूतोपादान मायारूपा प्रकृतिका परमात्मस्वरूप पुरुषतत्त्वके बोधसे मिथ्यात्वनिश्चय करनेवाले निर्वाण लाभ करते हैं।'', ''यह आत्मतत्त्व किसी अन्यसे या स्वत: वस्तुत: समुत्पन्न नहीं होनेवाला है।'', ''उस स्वप्रकाश परम शुभ्र चिद्दर्पणमें अनात्म वस्तुएँ उसी प्रकार प्रतिफलित होती हैं, जिस प्रकार सरोवरमें तटवर्ती वृक्ष।'', ''हे अनघ! दर्पणान्तर्वर्ती पुरके तुल्य जिसमें जगत्-रूप आभास परिलक्षित है, वह ब्रह्म मैं हूँ, ऐसा जानकर कृतार्थ होओ।'', ''अध्यात्मशास्त्रका सिद्धान्त अनात्मप्रपञ्चके अपह्नवमें ही सन्निहित है। वस्तुत: न माया है, न अविद्या, शान्त और विशुद्ध ब्रह्ममात्र स्थित है।''

औपनिषदप्रस्थान महाशून्यको ही निर्वाणरूप समाधिसे अभिहित करता है। -

''प्रभाशून्यं मन:शून्यं बुद्धिशून्यं निरामयम्।
सर्वशून्यं निराभासं समाधिरभिधीयते।।''
(सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषत् १७)

''महाशून्यं ततो याति सर्वसिद्धिसमाश्रयम्।।''
(सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषत् ९)

आत्मा अनिर्वाच्य, अनिर्देश्य, अखण्डानन्दैकरसात्मक अद्वय

ज्ञानस्वरूप कर्मातीत कालातीत गुणातीत मायातीत आद्यन्तशून्य सर्वोपाधिशून्य प्रणवार्थ परमेश्वर है। -

"तच्चानिर्वाच्यमनिर्देश्यमखण्डानन्दैकरसात्मकं भवति। ... स एव परञ्ज्योतिः स एव मायातीतः स एव गुणातीतः स एव कालातीतः स एवाखिलकर्मातीतः स एव सत्योपाधिरहितः स एव परमेश्वरः स एव चिरन्तनः पुरुषः प्रणवाद्यखिलमन्त्रवाचक-वाच्य आद्यन्तशून्यः ... ।" (त्रिपाद्विभूति - महानारायणोपनिषत् १.१)

ध्यान रहे, सर्व दुःखोच्छेदके लिए तत्त्वानुशीलन कर्त्तव्य है।-

"अत्राहारार्थं कर्म कुर्यादनिन्द्यं
कुर्यादाहारं प्राणसन्धारणार्थम्।
प्राणाः सन्धार्यास्तत्त्वजिज्ञासनार्थम्
तत्त्वं जिज्ञास्यं येन भूयो न दुःखम्।।"
(योगवासिष्ठनिर्वाणप्रकरण - उ० २१.१०)

"आहारके लिए इस संसारमें शास्त्रानुरूप अनिन्द्य कर्म करना चाहिए। आहार प्राणरक्षाके लिए ही करना चाहिए। प्राणधारण तत्त्वजिज्ञासाके लिए ही हो, ताकि पुनः दुःख न मिले।।"

"आहारार्थं समीहेत युक्तं तत्प्राणधारणम्।
तत्त्वं विमृश्यते तेन तद्विज्ञाय विमुच्यते।।"
(श्रीमद्भागवत ११.१८.३४)

"आहारके लिए अनिन्द्य कर्मरूप आयास अवश्य करना चाहिए; क्योंकि आहारसे ही प्राणोंकी रक्षा होती है। प्राण रहनेसे ही तत्त्वविचार होता

है। तत्त्वविचारसे ही तत्त्वज्ञान होता है। तत्त्वविज्ञानसे मोक्ष होता है।।"

"वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।।
(श्रीमद्भागवत १.२.११)

"तत्त्ववेत्ता उसे तत्त्व कहते हैं, जो आश्रयरूप ज्ञाता और विषयरूप ज्ञेयके भेदसे रहित अद्वय ज्ञान है। वही ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् कहा जाता है।।"

"क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः पुराणः
साक्षात्स्वयञ्ज्योतिरजः परेशः।
नारायणो भगवान् वासुदेवः
स्वमाययात्मन्यवधीयमानः ।।"
(श्रीमद्भगवद्गीता ५.११.१३)

"उसीको क्षेत्रज्ञ, आत्मा, पुरुष, पुराण, साक्षात्स्वयञ्ज्योति, अज, परेश (ब्रह्मादिदेवशिरोमणियोंके भी ईश), नारायण (जीवाभिव्यङ्ग्य), वासुदेव (सर्वाश्रिय) आदि नामोंसे अभिहित करते हैं। ऐसे प्रभु अपनी मायासे जीवोंके नियामक सिद्ध होते हैं।।"

"आत्मा क्षेत्रज्ञ इत्युक्तः संयुक्तः प्राकृतैर्गुणैः।
तैरेव तु विनिर्मुक्तः परमात्मेत्युदाहृतः।।"
(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व १८७.२३)

"आत्मदेव जब प्राकृत गुणोंसे युक्त होता है, तब उसे क्षेत्रज्ञ कहते हैं और जब उन्हीं गुणोंसे मुक्त हो जाता है, तब परमात्मा कहलाता है।।"

६. ब्रह्मवाद

"आत्मानं तं विजानीहि सर्वलोकहितात्मकम्।
तस्मिन् यः संश्रितो देहे ह्यब्बिन्दुरिव पुष्करे।। "
(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व १८७.२४)

"तुम क्षेत्रज्ञको आत्मा ही समझो। वह सर्वलोकहितस्वरूप है। इस शरीरमें रहकर भी वह कमलपत्रपर पड़े हुए जलबिन्दुकी तरह वास्तवमें इससे असङ्ग ही है।।"

"क्षेत्रज्ञं तं विजानीहि नित्यं लोकहितात्मकम्।
तमो रजश्च सत्त्वं च विद्धि जीवगुणानिमान्।।"
(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व १८७.२५)

"उस क्षेत्रज्ञको सदा आत्मा ही जानो। वह सम्पूर्ण जगत्का हितस्वरूप है। तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुण - इन तीनों प्राकृत गुणोंको प्रकृतिस्थित होनेके कारण जीवके गुण समझो।।"

"लोहयुक्तं यथा हेम विपक्वं न विराजते।
तथापक्वकषायाख्यं विज्ञानं न प्रकाशते।।"
(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व २१२.६)

"जैसे लोहयुक्त सुवर्ण आगमें पकाकर शुद्ध किये बिना अपने स्वरूपसे प्रकाशित नहीं होता, वैसे ही चित्तके रागादिदोषोंका नाश हुए बिना उसमें ज्ञानस्वरूप आत्मा प्रकाशित नहीं होता।।"

"शरीरपक्तिः कर्माणि ज्ञानं तु परमा गतिः।
कषाये कर्मभिः पक्वे रसज्ञाने च तिष्ठति।।"
(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व २७०.३८)

"कर्म स्थूल और सूक्ष्म शरीरकी शुद्धि करनेवाले हैं, परन्तु

ज्ञान परम गतिरूप है। जब कर्मोंद्वारा चित्तके रागादि दोष पककर दग्ध होने योग्य हो जाते हैं, तब योगी रसरूप ज्ञानमें स्थित हो जाता है।।"

"बीजान्यग्न्युपदग्धानि न रोहन्ति यथा पुनः।
ज्ञानदग्धैस्तथा क्लेशैर्नात्मा सम्पद्यते पुनः।।"
(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व २११.१७)

"जैसे आगसे भूने हुए बीज नहीं उगते, वैसे ही ज्ञानाग्निसे अविद्यादि सर्वक्लेशोंके दग्ध हो जानेपर जीवात्मा पुनर्जन्म नहीं प्राप्त करता।।"

औपनिषदप्रस्थानमें विश्वभेदकलनादिवर्जित पूर्ण, अद्वय, अखण्ड विज्ञानमात्र निर्विकल्प तुरीयातीत परिपूर्ण अनन्त सच्चिदानन्दघन तत्त्व ही आत्मरूपसे विद्यमान है। -

"पूर्णमद्वयमखण्डचेतनं विश्वभेदकलनादिवर्जितम्।
अद्वितीयपरसंविदंशकं तत्सदाहमिति मौनमाश्रय।।"
(वराहोपनिषत् ३.८)

"सत्यविज्ञानमात्रोऽहं सन्मात्रानन्दवानहम्।
तुरीयातीतरूपोऽहं निर्विकल्पस्वरूपवान्।।"
(तेजोबिन्दूपनिषत् ३. ४० - ४१)

"सद्घनं चिद्घनं नित्यमानन्दघनमव्ययम्।
प्रत्यगेकरसं पूर्णमनन्तं सर्वतोमुखम्।।"

वेदान्तसम्मत आत्मतत्त्व परम ज्योतिःस्वरूप रूपवर्जित चिद्रूप है। - **"चित्स्वरूपं परं ज्योतिः स्वरूपं रूपवर्जितम्"** (गोपालोत्तरतापिन्युपनिषत् १५)। उसके ज्ञानसे ही कैवल्य सम्भव है। - **"ज्ञानं कैवल्यसाधनम्"** (जाबालदर्शनोपनिषत् ६. ४७)

मूलाविद्या अपने कार्योंके सहित सत् और असत् से विलक्षणा अनिर्वाच्या है- "**सविलासमूलाविद्या सर्वकार्योपाधिसमन्विता सदसद्विलक्षणानिर्वाच्या**" (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ३)। माया न सती है, न असती, न उभयरूपा सदसती ही - "**न सती , न असती, न सदसती**" (**सर्वसारोपनिषत् ४**)

जो कुछ अनात्म - प्रपञ्च है, वह स्वपरविरोधी ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानसे बाध्य तथा स्वपरविरोधी ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानके तुल्य न सत् है, न असत् न सदसत् ; न भिन्न, न अभिन्न, न भिन्नाभिन्न है; न सभाग, न निर्भाग, न उभयात्मक ही है। वह नवकोटि - विनिर्मुक्त है। -"**न सन्नासन्न सदसद्भिन्नाभिन्नं न चोभयम्। न सभागं न निर्भागं न चाप्युभयरूपम्। ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानं हेयं मिथ्यात्वकारणात् ।।**" (**परब्रह्मोपनिषत् १**)

जीवोंकी संसृतिमें हेतु जगत्की सत्यरूपसे स्वीकृति ही है। जगत्का असद्रूपसे भान संसारकी निवृत्तिमें हेतु है। अतएव जीवसृष्ट द्वैतरूप संसारके तुल्य ही ईश्वरसृष्ट द्वैतरूप जगत् भी मिथ्या ही है। जगत् को सत्य समझना जन्म - मरणादिप्रबन्धरूप संसारका प्रवर्तक है। इसे असत् समझना संसारका निवर्तक है। -

"सत्यत्वेन जगद्भानं संसारस्य प्रवर्तकम्।।
असत्यत्वेन भानं तु संसारस्य निवर्तकम्।"
(आत्मोपनिषत् ४.४.१/२)

मायाको नवकोटि - विनिर्मुक्त बताकर उक्त श्रौत - सिद्धान्तका ही प्रकाश श्रीभगवत्पाद शङ्कराचार्यमहाभागने किया है -

"सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो
भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो।
साङ्गाप्यनङ्गाप्युभयात्मिका नो
महाद्भुतानिर्वचनीयरूपा ॥"
(विवेकचूडामणि १११)

ध्यान रहे; वेदान्तवेद्य ब्रह्म यद्यपि वाणीका अविषय है, तथापि उसे अनित्य कार्यात्मक प्रपञ्च और असत् बन्ध्यापुत्रादिसे विलक्षण सिद्ध करनेके लिए परम भावरूप सत्य मानना आवश्यक है। केवल प्रतिषेध विज्ञानसे सर्वास्तित्व निरसनका विभ्रम स्वाभाविक है। न सत्, न असत्, न उभय, न अनुभयको विनेयके हृदयमें आस्थान्वित करनेके लिए ब्रह्मको परम सत्य स्वीकार करना आवश्यक है। अभिप्राय यह है कि ब्रह्मको सत् प्रकृति, असत् घटादि, सदसत् मृत्तिकादि, न सदसत् आकाशकुसुमादिसे विलक्षण सिद्ध करनेके लिए परम सत्य अर्थात् परमभावरूप मानना आवश्यक है - **'आत्मैवाहं परं सत्यम्'** **(तेजोबिन्दूपनिषत् ६.५८) 'सत्यज्ञानानन्दोऽहमद्वयम्'** **(तेजोबिन्दूपनिषत् ६.६०)**। उसे अभीष्टसिद्धि - जन्य सुख, अनभीष्टसिद्धिजन्य दुःख, अभीष्टानभीष्टोलब्धिजन्य सुखदुःख और उदासीनतारूप चतुष्कोटिविनिर्मुक्त सिद्ध करनेके लिए परम भावरूप सदानन्दस्वरूप मानना आवश्यक है - **'सदानन्दं ब्रह्मैवाहं सनातनम्'** **(तेजोबिन्दूपनिषत् ३.३२), "सत्यं परं धीमहि" (श्रीमद्भागवत १.१.१, १२.१३.१९), 'परं भावमजानन्तः (श्रीमद्भगवद्गीता ९. ११)॥**

बौद्धसिद्धान्त और वेदान्त

६. ब्रह्मवाद

बौद्धागममें वेदबीज प्रणवका प्रतिपादन , सदाचारका अनुपालन, तथा सम्यग्दृष्टि और समाधि आदिका साधनसोपानके रूपमें समुल्लेख एवम् विज्ञान और शून्यका आत्मरूपसे सन्निवेश वेदवेदान्तोंके प्रभावसे बौद्धागमको अछूता सिद्ध नहीं होने देता। उसे दृश्य अतएव अचेतन, अदृश्य अतएव जीवादि चेतन, उभय अर्थात् अधिदैवादि चेतनाचेतन, अनुभय अर्थात् बन्ध्यापुत्रादिवत् न चेतन न अचेतनरूप चतुष्कोटिविनिर्मुक्त सिद्ध करनेके लिए अद्वयज्ञानस्वरूप कहना आवश्यक है -

"वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।।"
(श्रीमद्भागवत १.२.११)

उपनिषदोंका आत्मसन्दर्भमें यह स्पष्ट उल्लेख है -

"ओङ्कारार्थस्वरूपोऽस्मि निष्कलङ्कमयोस्म्यहम्।
चिदाकारस्वरूपोऽस्मि नाहमस्मि न सोऽस्म्यहम्।।
न हि किञ्चित्स्वरूपोऽस्मि निर्व्यापारस्वरूपवान्।
निरंशोऽस्मि निराभासो न मनो नेन्द्रियोऽस्म्यहम्।।"
(तेजोबिन्दूपनिषत् ३.४३,४४)

"मैं ओङ्कारका अर्थस्वरूप हूँ। मैं निष्कलङ्क हूँ। मैं चित्स्वरूप हूँ। मैं अहमर्थ, इदमर्थ तथा तदर्थ, - अहम्, यह, वह - से असङ्ग और अतीत हूँ। अनुभवगोचर जो कुछ है, वह मैं नहीं हूँ। मैं निष्क्रिय हूँ। मैं निरंश, निराभास हूँ। मैं न तो मन हूँ, न इन्द्रिय ही।। "

"सर्वशून्यस्वरूपोऽहं सकलागमगोचरः।
मुक्तोऽहं मोक्षरूपोऽहं निर्वाणसुखरूपवान्।।

सत्यविज्ञानमात्रोऽहं सन्मात्रानन्दवानहम्।
तुरीयातीतरूपोऽहं निर्विकल्पस्वरूपवान्।।"
(तेजोबिन्दूपनिषत् ३. ४० - ४१)

"मैं कार्य - कारणात्मक सर्वसंज्ञक वस्तुसे सर्वथा अतीत हूँ। मैं सर्वागम प्रतिपाद्य अर्थात् सर्वागमतात्पर्यस्वरूप हूँ। मैं मुक्त हूँ, मोक्षस्वरूप हूँ। मैं निर्वाणरूप निर्विशेष सुखस्वरूप हूँ। मैं सत्यस्वरूप विज्ञानमात्र हूँ। मैं सन्मात्र आनन्दस्वरूप हूँ। मैं तुरीयातीतरूप हूँ, सर्वथा निर्विकल्पस्वरूप हूँ।।"

"अशून्यं शून्यभावं तु शून्यातीतं हृदिस्थितम्।
न ध्यानं न च ध्याता च न ध्येयो ध्येय एव च।।
सर्वं च न परं शून्यं न परं न परात्परम्।
अचिन्त्यमप्रबुद्धं च न सत्यं न परं विदुः।। "
(तेजोबिन्दूपनिषत् १ . १० - ११)

"शून्यभाव सर्वशून्यस्वरूप है, न कि शून्यसंज्ञक अभावरूप। वह शून्यातीत हृदयमें सन्निहित है। परस्परसापेक्ष ध्याता, ध्यान, ध्येय, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय - आदि - त्रिपुटी वस्तुतः निरपेक्ष आत्मामें निरस्त ही है। अतः न ध्याता है, न ध्यान, न ध्येय ही। आत्मदेव वाग्विलासरूप सर्व, पर, परात्पर - तारतम्ययुक्त कुछ भी नहीं है। तत्त्वज्ञ मनीषी उस अचिन्त्यस्वरूप अप्रबुद्ध निर्विशेष आत्मतत्त्वको सत्य, पर आदि शब्दगोचररूपसे सर्वथा विलक्षण ही जानते हैं।। "

"प्रलये सर्वशून्यं भवति" (त्रिपाद्विभूतिमहा - नारायणोपनिषत् ३), "सर्वदा सर्वशून्योऽहम्" (तेजोबिन्दूपनिषत्

३.२७), "यद्दृश्यं तदसद्विद्धि न मां विद्धि तथाविधम्" (तेजोबिन्दूपनिषत् ३.५२)के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि दृश्य जगत् असत् है, वह प्रलयमें दृश्यरूपसे शेष नहीं रहता, परन्तु आत्मदेव अवशिष्ट अवश्य रहता है।

बाह्याभ्यन्तर दृश्यशून्यतारूप निर्विशेषताकी अवधि स्वत:सिद्ध सच्चिदानन्दरूपता है। -

"यत्र नासन्न सद्रूपो नाहं नाप्यनहङ्कृतिः।
केवलं क्षीणमनन आस्तेऽद्वैतेऽतिनिर्भयः।।
अन्त:शून्यो बहि:शून्यः शून्यकुम्भ इवाम्बरे।
अन्त:पूर्णो बहि:पूर्णः पूर्णकुम्भ इवार्णवे।।"
(वराहोपनिषत् ४.१७,१८)

"जहाँ न असत् है, न सद्रूप है, न अहम् है, न अनहङ्कृति ही है। केवल मननरहित अतिनिर्भय अद्वैत ही है, उस परम पदमें तन्मात्र होकर वह स्थित है।।"

"अन्त:शून्य, बहि:शून्य, आकाशमें स्थित शून्य (खाली, रिक्त) कुम्भके सदृश दृश्यशून्य तथा अन्त:पूर्ण बहि:पूर्ण महोदधिमें सन्निहित जलपूर्ण पूर्ण कुम्भके सदृश स्थित है।। "

"तस्माद्वासनया युक्तं मनो बद्धं विदुर्बुधाः।
सम्यग्वासनया त्यक्तं मुक्तमित्यभिधीयते।।
सम्यगालोचनात्सत्याद्वासना प्रविलीयते।
वासना विलये चेतः शममायाति दीपवत्।।
(मुक्तिकोपनिषत् २.१६,१७)

सम्यग्दर्शनसम्पन्न कर्मोंसे निबद्ध नहीं होता। सम्यग्दर्शनविहीन संसारको प्राप्त होता है, अर्थात् जन्म-मृत्युरूप संसृतिचक्रसे मुक्त नहीं होता। - "**सम्यगदर्शनसम्पन्नः कर्मभिर्न निबद्ध्यते।**

दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते।।"

(मनुस्मृति ६.७४)

ध्यान रहे, -

"**सम्यङ्निदर्शनं नाम प्रत्यक्षं प्रकृतेस्तथा।**
गुणतत्त्वान्यथेतानि निर्गुणोऽन्यस्तथा भवेत्।।
न त्वेवं वर्तमानानामावृत्तिर्विद्यते पुनः।
विद्यतेऽक्षरभावत्वादपरं परमव्ययम्।।
पश्यैरन्यैकमतयो न सम्यक् तेषु दर्शनम्।
ते व्यक्तं प्रतिपद्यन्ते पुनः पुनररिन्दम।।"

(महाभारत - शान्तिपर्व ३०६. ४६ - ४८)

"प्रकृति तथा पुरुषका प्रत्यक्ष - दर्शन ही सम्यग्दर्शन है। ये जो गुणमय तत्त्व हैं, इनसे भिन्न परम पुरुष परमात्मा निर्गुण है।।"

"इस दर्शनके अनुसार ज्ञान प्राप्त करनेवालोंकी इस संसारमें पुनरावृत्ति नहीं होती, कारण यह है कि वे अविनाशी - अक्षरभावको प्राप्त हो जाते हैं। अतएव परमात्मस्वरूप निर्विकार परब्रह्मरूपमें ही उनकी स्थिति होती है।।"

"शत्रुदमन नरेश ! जिनकी बुद्धि नानात्वका दर्शन करती है, उन्हें सम्यग्ज्ञानकी समुपलब्धि नहीं होती। ऐसे व्यक्तियोंको पुनः - पुनः देह - धारण करना पड़ता है।।"

६. ब्रह्मवाद

रागद्वेषविनिर्मुक्त, समलोष्टाश्मकाञ्चन, दम्भ, अहङ्कार, पिशुनता और प्राणिहिंसासे वियुक्त, पूर्णनिःस्पृह, आत्मज्ञानगुणसम्पन्न यतिवर मुनि मोक्षलाभ करते हैं। –

"रागद्वेषवियुक्तात्मा समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
प्राणिहिंसानिवृत्तश्च मुनिः स्यात्सर्वनिःस्पृहः।।
दम्भाहङ्कारनिर्मुक्तो हिंसापैशुन्यवर्जितः।
आत्मज्ञानगुणोपेतो यतिर्मोक्षमवाप्नुयात्।।

(नारदपरिव्राजकोपनिषत् ३, ३४,३५)

ऐसी स्थितिमें उत्पत्ति, निरोध (प्रलय), बद्ध, मुमुक्षु, साधक और सिद्ध (मुक्त), वन्द्य, शासनकी गाथा वृथा है। -

"न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षु र्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता।।"

(आत्मोपनिषत् ३१, त्रिपुरातापिन्यु० १०, अवधूतोपनिषत् ८, माण्डूक्यकारिका २.३२)

"न निरोधो न चोत्पत्तिर्न वन्द्यो न च शासनम्।
न मुमुक्षा न मुक्तिश्च इत्येषा परमार्थता।।"

(ब्रह्मबिन्दूपनिषत् १०)

इस प्रकार प्रतिषेधमुखसे ब्रह्म सत्यादि चतुष्कोटिविलक्षण है तथा स्वतः सच्चिदानन्दमात्र है।

"सत्यानन्दस्वरूपोऽहं ज्ञानानन्दघनोस्म्यहम्।
विज्ञानमात्ररूपोऽहं सच्चिदानन्दलक्षणः।।"

(तेजोबिन्दूपनिषत् ३.३१)

ध्यान रहे, भाववृत्ति या शून्यवृत्ति ही पूर्णता नहीं है। ब्रह्मवृत्तिसे

ही पूर्णता सम्भव है। -

**"भाववृत्त्या हि भावत्वं शून्यवृत्त्या हि शून्यता।
ब्रह्मवृत्त्या हि पूर्णत्वं तथा पूर्णत्वमभ्यसेत् ।।"
(तेजोबिन्दूपनिषत् १.४२)**

आत्मदेव शून्यरूप नहीं है। ध्याता, ध्यान, ध्येयादि त्रिपुटीके शान्त हो जानेपर त्रिपुटीशून्य अशून्य ही हृदयमें प्रत्यगात्मरूपसे शेष रहता है। - **"अशून्यं शून्यभावं तु शून्यातीतं हृदि स्थितम्" (तेजोबिन्दूपनिषत् १.१०)।**

आत्मदेवकी जगत्कारणता तभी तक सिद्ध है, जब तक कार्यके मिथ्यात्वका अनिश्चय है। कार्यके मिथ्यात्वका निश्चय होते ही कारणकी कारण संज्ञा विलुप्त हो जाती है। आदि और अन्तयुक्त घटादिके मिथ्यात्वका निश्चय होते ही मिट्टीकी कारणता विलुप्त हो जाती है। कार्यकारणविनिर्मुक्त मृत्तत्त्व ही शेष रहता है। तद्वत् कार्यप्रपञ्चके मिथ्यात्वका निश्चय होते ही कार्यकारणता और व्याप्यव्यापकतासे विनिर्मुक्त अद्वयात्मतत्त्व ही शेष रहता है। -

**"कारणं यस्य वै कार्यं कारणं तस्य जायते।
कारणं तत्त्वतो नश्येत्कार्याभावे विचारतः।।"
(तेजोबिन्दूपनिषत् १. ४८)**

**"व्याप्यव्यापकता मिथ्या सर्वमात्मेति शासनात्।"
(योगशिखोपनिषत् ४.४)**

जगत् - कारण सत् है, न कि अभावात्मक असत्। -

"इदं सर्वं जगत्पूर्वं सदेवाऽऽसीत्सुरर्षभाः।

असदासीदिति भ्रान्ता वदन्ति सुरपुङ्गवाः।।"
(सूतसंहिता ४ यज्ञ. ब्रह्मगीता ५. ३७)

"हे देवोत्तमो! अद्वितीय सत्य ही जगत्‌का अभिन्न निमित्तोपादानकारण है। यह परिदृश्यमान नामरूपात्मक सम्पूर्ण कार्यप्रपञ्च सृष्टिके पूर्व सत् ही था। अभिप्राय यह है कि जगत् महाप्रलयदशामें सद्रूप कारणात्मक ही था, न कि नामरूपात्मक। यद्यपि वस्तुस्थिति ऐसी ही है, तथापि भ्रान्त जन- 'जगत् असत् ही था' ऐसा अनर्गल प्रलाप करते हैं। उनका कथन है कि '**विनष्ट बीजादिसे ही अङ्कुरादि कार्योंकी उत्पत्ति देखी जाती है, अतएव कारणका उपमर्दन (नाश) हुए बिना कार्यका प्रादुर्भाव असङ्गत है। अतएव अङ्कुरादि कार्योंका अभाव ही कारण है।**' उक्त दृष्टान्तके अनुरोधसे जगत्कारण भी असत् ही सिद्ध होता है। परन्तु ऐसा माननेवाले अवश्य ही भ्रान्त हैं। मृत देवदत्तमें पुत्रोत्पादन सामर्थ्यतुल्य नष्ट कारणमें कार्योत्पादनशक्ति असङ्गत है। अङ्कुरादि कार्यकालमें बीजादि कारणसंस्थानादि विशेषोंकी तथा उनके अवयवोंकी अनुवृत्तिके अनुरोधसे असत्‌को कारण मानना युक्त नहीं।।"

"असन्न कारणं युक्तं वस्तुतत्त्वनिरूपणे।
वन्ध्यापुत्रोऽपि सर्वेषां कारणं स्यात्स्वयं खलु।।"
(सूतसंहिता ४ यज्ञ. ब्रह्मगीता ५. ३८)

"असत्‌को कारण मानना युक्त नहीं। कारण यह है कि असत् जो कि सर्व प्रकारसे निरुपाख्य ही मान्य है, वह भावरूप धर्माश्रियत्वरूप कारणत्वलक्षणविरहित है। कदाचित् हठपूर्वक ऐसे असत्‌को ही

जगत्कारण माना जाय, तब तो असत् से सर्वथा अविलक्षण (अविशेष) बन्ध्यापुत्र भी निस्सन्देह सर्वकारण स्वतः सिद्ध होगा।।"

"स्वशक्त्याऽसच्च सर्वेषां कारणं भवतीति चेत्।
शक्तिरप्यसतो नास्ति सतो बीजस्य दर्शनात्।।"

(सूतसंहिता ४ यज्ञ. ब्रह्मगीता ५. ३९)

"ऐसा मानना भी युक्त नहीं कि स्वशक्तिके योगसे असत् भी सर्वकारण हो सकता है। कारण यह है कि असत्की शक्ति नहीं होती। अभिप्राय यह है कि असत् कहीं भी शक्तिमान् सिद्ध नहीं होता। सत् - बीज ही अङ्कुरोत्पादिनी शक्तिसे समन्वित परिलक्षित होता है। यह तथ्य अन्वय - व्यतिरेकरूप अनुमानप्रमाणसे सिद्ध है।।"

"अङ्कुरोत्पादिका शक्तिः सद्रूपस्यैव दृश्यते।
खलु बीजस्य सर्वत्र नासतस्तद्दर्शनात्।।"

(सूतसंहिता ४ यज्ञ. ब्रह्मगीता ५. ४०)

"निस्सन्देह अन्वय - व्यतिरेकरूप अनुमानप्रमाणके बलपर अङ्कुरोत्पादिका शक्ति सर्वत्र सद्रूप बीजकी ही देखी जाती है, न कि कहीं भी वह असत् की दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार, दृष्टविरोध होनेसे असत्की शक्तिकल्पना सर्वथा अनुपयुक्त है।।"

"सापि शक्तिः सती किम्वाऽसती सदसती तु वा।
सती चेत्सा सती शक्तिः कथं वन्ध्यासुताश्रया।।
आश्रयत्वं सतो दृष्टं खलु लोके न चासतः।
साऽसती चेत्कथं शक्तिः कार्यनिर्वाहिकाऽसती।।"

(सूतसंहिता ४ यज्ञ. ब्रह्मगीता ५. ४१,४२)

"अब प्रश्न उठता है कि वह शक्ति सती है किं वा असती, अथवा सदसती ? भावरूपा शक्ति निरुपाख्य असत्का धर्म हो,यह कैसे सम्भव है ? अत्यन्त असत् वन्ध्यासुतादिक भावरूप शक्तिसे सम्पन्न नहीं देखे जाते, न युक्तिपूर्वक सिद्ध ही होते हैं। सद्रूपा शक्तिके आश्रय बीजादि सत् ही दृष्टिगोचर होते हैं, न कि नरविषाणादि। अतएव भावरूपा शक्तिका आश्रय असत्को स्वीकार करनेपर वह बीजादिके सदृश ही सत् सिद्ध होगा। 'असत् की सद्रूपा शक्ति' यह कथन सर्वथा अयुक्त है। कदाचित् असत्के समाश्रित रहनेवाली शक्ति स्वयं असत् ही है तो असत् के कारणत्वके उपादानके लिए स्वीकृत वह शक्ति स्वयं ही बन्ध्यासुतादिसदृश कार्यसम्पादनसामर्थ्यशून्य ही सिद्ध होगी।।"

"बन्ध्यापुत्रः स्वयं नैव कार्यनिर्वाहकः खलु।
निर्वाहकत्वधर्मश्च सत एव हि दृश्यते।।"
(सूतसंहिता ४ यज्ञ. ब्रह्मगीता ५. ४३)

"'असदाश्रिता असती शक्ति कार्यनिर्वाहिका सिद्ध होगी' ऐसा मानना भी युक्त नहीं। बनध्यासुत स्वयं कार्यनिर्वाहक सिद्ध नहीं होता। सर्वत्र निर्वाहकत्व धर्म सत् का ही दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार असती शक्तिके योगसे असत् कारण हो, ऐसा सम्भव नहीं।।"

"शक्तिः सदसती सा चेद्दोषद्वयसमागमः।
अतः स्वशक्त्या चासत्तु सर्वेषां नैव कारणम्।।"
(सूतसंहिता ४ यज्ञ. ब्रह्मगीता ५. ४४)

"यह कथन तो अत्यन्त उपहासास्पद ही है कि असदाश्रिता शक्ति सत् - असत् - उभयात्मिका है। किसी भी वस्तुकी सत् - असत् - रूपता युक्तियुक्त नहीं। अतएव शक्तिको सदसती माननेपर

सती अथवा असती माननेपर प्राप्त दोनों दोषोंकी प्रसक्ति अनिवार्य है। अतः 'स्वशक्तिसे असत् सम्पूर्ण सर्गका कारण है' यह कथन सर्वथा अनुपयुक्त है।।"

''तस्मात्सोऽयमसद्वादो जल्पमात्रं न युक्तिमत्।
अतः सदेव सर्वेषां कारणं नासदास्तिकाः।।"

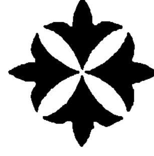
(सूतसंहिता ४ यज्ञ. ब्रह्मगीता ५. ४५)

''अतएव हे आस्तिको! शून्यवादियोंद्वारा निरूपित यह असद्वाद जल्पमात्र है, न कि युक्तियुक्त; इसलिए सत् ही सबका कारण है, न कि असत्।।"

उक्त तथ्यके अनुशीलनसे यह रहस्य ध्वनित होता है, '**विनष्ट बीजादिसे ही अङ्कुरादि कार्योंकी उत्पत्ति ' प्रकारान्तरसे अभावसे भावकी उत्पत्ति ही है।**

''**शून्यदृक्** " **(श्रीमद्भागवत १२.६.४०)** की उक्तिसे यह तथ्य सिद्ध है कि वेदान्तवेद्य आत्मतत्त्व शून्यरूप नहीं, अपितु शून्यका भी साक्षी है।





७.विज्ञानवाद

इस प्रकार द्वन्द्व (सत्, असत्), युग्म (सदसत्) और अयुग्म (अनुभय) - प्रतिषेधरूप बौद्धागमसिद्ध शून्यवाद औपनिषद दर्शनका प्रतिभास है। केवल निषेधमुखसे निरूपणसे निरुत्साहित शिष्यके हृदंयमें उत्साहवर्द्धनके लिए उत्पत्तिविनाशशून्य , सर्वसङ्कल्पविरहित अद्वय ज्ञानका उपदेश वेदागमका अनुपालन है। -

''यस्य स्वभावो नोत्पत्तिर्विनाशो नैव दृश्यते।
तज्ज्ञानमद्वयं नाम सर्वसङ्कल्पवर्जितम्।।"
(अद्वयवज्रसिद्धि)

''जिसका स्वभाव उत्पत्ति तथा विनाश दृष्टिगोचर नहीं होता, सर्वसङ्कल्परहित उसका नाम अद्वय ज्ञान है।।"

''वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।।"
(श्रीमद्भागवत १.२.११)

''तत्त्ववेत्ता उसे तत्त्व कहते हैं, जो आश्रयरूप ज्ञाता और विषयरूप ज्ञेयके भेदसे रहित अधिष्ठानात्मक अद्वय ज्ञान है। वह ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् - इन शब्दोंसे प्रतिपादित होता है।।"

विज्ञानवादी धर्मसंज्ञक जीवको निःस्वभाव आदिशान्त मानते हैं। अतएव उसका उत्पाद और निरोधादि अस्वीकार करते हैं। -

७. विज्ञानवाद

"निःस्वभावतया सिद्धा उत्तरोत्तरनिःश्रयाः।
अनुत्पादोऽनिरोधश्चादिशान्तिः परिनिर्वृतिः।।"
(महायानसूत्रालङ्कार ११.५१)

सब धर्म, संस्कार, भाव, अभाव असत् हैं। जीव और जगत्‌की समुपलब्धि स्वप्न, मरीचिका, उदकचन्द्र, प्रतिबिम्ब और प्रतिश्रुतितुल्य है। उनकी सत्ता, असत्ता मायोपम है। ग्राह्य-ग्राहकरूप दर्शन और निमित्तसंज्ञक विकल्प चित्त, मन, विज्ञान या विज्ञप्तिका परिणाममात्र है।-

"विज्ञानपरिणामोऽयं विकल्पो यद्विकल्प्यते।
तेन तन्नास्ति तेनेदं सर्वं विज्ञप्तिमात्रकम्।।"
(त्रिंशिका १७)

"चित्तं मनश्च विज्ञानं संज्ञा वैकल्पवर्जिताः" (लङ्कावतार ३. ४०)- चित्त, मन तथा विज्ञप्ति - विज्ञानके अन्य पर्याय हैं। चित्त वस्तुरूप धर्मोंकी बीजावस्था है। यह विज्ञानरूपसे स्फुरित होकर व्यवहार-साधक होता है। अतः चित्त आलयविज्ञान अर्थात् विज्ञानालय है। अभिप्राय यह है कि पदार्थमात्रकी धर्म संज्ञा है। वह हेतुसे समुत्पन्न, विनाशोन्मुख क्षणिक है। धर्म धर्मान्तरसे मिलकर नवीन धर्मका समुत्पादक होता है। विज्ञानरूपसे बहिर्निर्गत धर्म व्यवहार - साधक होते हैं। विज्ञानके बीजभूत धर्मोंका उद्गमस्थान **आलयविज्ञान** कहा जाता है। चेतनाका सम्पादक **'चित्त'** है। मननका सम्पादक होनेसे चित्त ही **'मन'** माना जाता है। विषयग्रहणमें हेतु होनेके कारण वही **'विज्ञान'** कहा जाता है। -

"चित्तमालयविज्ञानं मनो यन्मननात्मकम्।
गृह्णाति विषयान् येन विज्ञानं हि तदुच्यते।।"
(लङ्कावतार, गाथा १०२)

७. विज्ञानवाद

लोकनाथ बुद्धकी यह उक्ति है कि चित्त चित्तको नहीं देखता। सुतीक्ष्ण असिधारा भी जिस प्रकार अपनेको काटनेमें समर्थ नहीं, उसी प्रकार चित्त स्वयंको देखनेमें समर्थ नहीं होता। -

"उक्तं च लोकनाथेन चित्तं चित्तं न पश्यति।
न च्छिनत्ति यथाऽऽत्मानमसिधारा तथा मनः।।"

(बोधिचर्यावतार ९.१७)

बाह्य जगत् दृष्टिगोचर होनेपर भी वस्तुतः नहीं है। विचित्र तथा विविधरूपोंमें परिलक्षित चित्त वस्तुतः एकरूप है। यह भोगायतन देह तथा विविध वस्तुओंके उपभोगरूपसे प्रतिष्ठित बुद्धिरूप चित्त ही एकमात्र वास्तव सत् है, ऐसा मेरा कथन है। -

"दृश्यते न विद्यते बाह्यं चित्तं चित्रं हि दृश्यते।
देहभोगप्रतिष्ठानं चित्तमात्रं वदाम्यहम्।।"

(लङ्कावतार ३.३३)

"बुद्धिस्वरूपमेकं हि वस्त्वस्ति परमार्थतः।
प्रतिभानस्य नानात्वान्न चैकत्वं विहन्यते।।"

(सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह ४.२.६)

ग्राह्य, ग्राहक तथा ग्रहणरूपसे; अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवरूपसे तद्वत् ज्ञाता, ज्ञान एवम् ज्ञेयरूपसे निर्विभाग बुद्धिरूप चित्त ही भ्रान्तोंको परिलक्षित होता है। यह दृश्यवर्ग चित्तमात्र है। -

"चित्तमात्रं न दृश्योऽस्ति द्विधा चित्तं हि दृश्यते।
ग्राह्यग्राहकभावेन शाश्वतोच्छेदवर्जितम्।।"

(लङ्कावतार ३.६५)

७. विज्ञानवाद

"अविभागो हि बुद्ध्यात्मा विपर्यासितदर्शनैः।
ग्राह्यग्राहकसंवित्तिभेदवानिव लक्ष्यते।।"
(सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह पृ.१२)

बौद्धागमसिद्ध आत्मा उत्पत्तिविनाशशून्य, सर्वसङ्कल्पवर्जित अद्वय ज्ञानस्वरूप है। यह तथ्य निम्नलिखित वचनके अनुशीलनसे सिद्ध है। -

"यस्य स्वभावो नोत्पत्तिर्विनाशो नैव दृश्यते।
तज्ज्ञानमद्वयं नाम सर्वसङ्कल्पवर्जितम्।।"
(चर्याचर्यविनिश्चयकी संस्कृतटीकामें समुद्धृत, अद्वयवज्रसिद्धि)

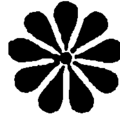
ग्राह्य -ग्राहकरूप विकल्प तिमिर रोगी द्वारा दृष्ट द्विचन्द्रादिवत् वितथ हैं। देश, काल भी वस्तुतुल्य अस्तित्वहीन असत् हैं। स्वर्ग, नरकादि स्वप्नदृष्ट स्वर्ग, नरकादितुल्य तुच्छ ही हैं। रूप, कार्य, समाख्यादि प्रज्ञप्तिविलास होनेसे प्रज्ञप्तिमात्र हैं।

ज्ञान और ज्ञेयकी सहस्थितिकी अनुभूति दोनोंमें अभेदसिद्धि है।-

"सहोपलम्भनियमादभेदो नीलतद्धियोः।
भेदश्च भ्रान्तिविज्ञानैर्दृश्येतेन्दाविवाद्वये ।।"
(प्रमाणसमुच्चय, प्रमाणवार्तिक ३.३८९)

"ज्ञान और ज्ञेयके सहोपलम्भके नियमसे नील और उसके ज्ञानका अभेद है। भेद भ्रान्तिविज्ञानोंसे देखा जाता है, जैसे एक चन्द्रमें द्विचन्द्र।।"





८. वेदोक्त विज्ञानवाद

विज्ञानकी कूटस्थनित्यता, प्रपञ्चकी अनिर्वचनीयता, कूटस्थनित्य विज्ञानकी शून्यकल्प निर्विशेषता वेदार्थविज्ञान है। यही क्षणिकविज्ञान और शून्यका निराकरण है। -"ज्ञानं यथा सत्यमसत्यमन्यत्" - **(विष्णुपुराण २.१२.४५) - "एकमात्र ज्ञान ही सत्य है, तदतिरिक्त असत् है।"**

वेदागमका सार - तत्त्वज्ञोंका चरम उद्गार है। -"मैं असत् नहीं, अपितु कूटस्थ अद्वय परम गुरु सच्चिदानन्दघन आत्मा हूँ। ज्ञानाकार यह जगत् अनुत्पन्नतुल्य है।" -

"सच्चिदानन्दमात्रोऽहमनुत्पन्नमिदं जगत्।
आत्मैवाहं परं सत्यं नान्याः संसारदृष्टयः।।
सत्यमानन्दरूपोऽहं चिद्घनानन्दविग्रहः।
अहमेव परानन्द अहमेव परात्परः।।
ज्ञानाकारमिदं सर्वं ज्ञानानन्दोऽहमद्वयः।
सर्वप्रकाशरूपोऽहं सर्वाभावस्वरूपकम्।।
चिदाकारं चिदाकाशं चिदेव परमं सुखम्।
आत्मैवाहमसन्नाहं कूटस्थोऽहं गुरुः परः।।"

(तेजोबिन्दूपनिषत् ६. ५८-६०, ६२)

"मैं सच्चिदानन्दमात्र हूँ। यह जगत् अनुत्पन्न है। मैं परम

सत्य आत्मस्वरूप ही हूँ। अनात्मप्रपञ्चरूप संसारसे संलग्न मेरी आत्ममान्यता नहीं है। मैं सत्यानन्दस्वरूप चिद्घनानन्दस्वरूप हूँ। मैं ही परानन्दस्वरूप पर - से भी पर हूँ। यह सर्वदृश्यप्रपञ्च ज्ञानस्वरूप ही है। मैं अद्वय ज्ञानानन्दस्वरूप ही हूँ। मैं सर्व प्रकाशस्वरूप और सर्वाभावस्वरूप हूँ। मैं चिदाकार, चिदाकाश, परम सुखस्वरूप चित् ही हूँ। मैं निस्सन्देह आत्मस्वरूप ही हूँ। मैं असत् कथमपि नहीं हूँ। मैं निर्विकार परम गुरु हूँ ।। ”

“सिद्धान्तोऽध्यात्मशास्त्राणां सर्वापह्नव एव हि।
नाविद्यास्तीह नो माया शान्तं ब्रह्मेदमक्लमम्।।”
(अन्नपूर्णोपनिषत् ५.११२)

“अध्यात्मशास्त्रोंका सिद्धान्त ब्रह्मातिरिक्त सबका अपह्नव अर्थात् निरसन, अपवाद, निषेध या मिथ्यात्वनिश्चयरूप बाध ही है। अतः ब्रह्मको जीवरूपसे प्रस्तुत करनेवाली अविद्या वस्तुतः नहीं है और ईश्वररूपसे स्फुरित करनेवाली माया भी नहीं है। सर्वभेदशून्य एकमात्र निष्कल, निर्विकल्प शान्त ब्रह्म ही है।।”

“यज्जगद्भासकं भानं नित्यं भाति स्वतः स्फुरन्।
स एव जगतः साक्षी सर्वात्मा विमलाकृतिः।।
प्रतिष्ठा सर्वभूतानां प्रज्ञानघनलक्षणः।
तद्विद्याविषयं ब्रह्म सत्यज्ञानसुखाद्वयम्।।
एकं ब्रह्माहमस्मीति कृतकृत्यो भवेन्मुनिः।।
सर्वाधिष्ठानमद्वन्द्वं परं ब्रह्म सनातनम्।
सच्चिदानन्दरूपं तदवाङ्मनसगोचरम्।। ”
(अन्नपूर्णोपनिषत् ४.२६ - २९)

''जो जगत् का भासक स्वतः स्फुरणरूप नित्य भान है, अर्थात् जिस स्वतःसिद्ध स्वप्रकाश नित्य तत्त्वके सान्निध्यमात्रसे जगत् उद्भासित हो रहा है, जो सर्वात्मा - सर्वरूप विमलस्वरूप है, वही जगत् का साक्षी है। सर्वभूतोंका परमाश्रयरूप प्रज्ञाघनस्वरूप वह अद्वितीय सच्चिदानन्द ब्रह्म ब्रह्मात्मतत्त्वके एकत्वविज्ञानरूप ब्रह्मविद्याका विषय है। जो मुनि 'वह एक ब्रह्म मैं हूँ', ऐसा जानता है, वह कृतकृत्य हो जाता है। वह सनातन परम ब्रह्म सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्दस्वरूप मन और वाणीका सर्वथा अविषय निर्द्वन्द्व है।।''

''चिच्चैत्यकलितो बन्धस्तन्मुक्तौ मुक्तिरुच्यते।
चिदचैत्या किलात्मेति सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहः।।
एतन्निश्चयमादाय विलोकय धियेद्धया।
स्वयमेवात्मनात्मानमानन्दं पदमाप्स्यसि।।
चिदहं चिदिमे लोकाश्चिदाशाश्चिदिमाः प्रजाः।
दृश्यदर्शननिर्मुक्तः केवलामलरूपवान्।।
नित्योदितो निराभासो द्रष्टा साक्षी चिदात्मकः।।
चैत्यनिर्मुक्तचिद्रूपं पूर्णज्योतिःस्वरूपकम्।
संशान्तसर्वसंवेद्यं संविन्मात्रमहं महत्।।
संशान्तसर्वसङ्कल्पः प्रशान्तसकलेषणः।
निर्विकल्पपदं गत्वा स्वस्थो भव मुनीश्वर।।"

(महोपनिषत् ६. ७७ - ८२)

''दृश्यसे कवलित चित् बन्ध है। दृश्यसंसर्गसे मुक्ति मुक्ति कही जाती है। विषयाध्यास-युक्त चित्त तथा चित्तविलास चैत्यरूपताका त्याग करते ही चित्तत्त्व जीवभावविहीन आत्मरूपसे शेष रहता है। बस,

इतना ही सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह है।। इस निश्चयको आत्मसात् कर विवेकविज्ञानसे उद्दीप्त बुद्धिसे अवलोकन करो तो स्वयं ही स्वयंसे स्वयंको आनन्दस्वरूप परम पदके रूपमें प्राप्त कर लोगे।। मैं चित् हूँ; ये लोक चित् हैं; ये दिशाएँ चित् हैं; ये प्रजाएँ भी चित् हैं; निःसन्देह दृश्य और दर्शनसे निर्मुक्त केवल आत्मस्वरूप ही सर्वरूपोंमें स्थित है। चित् के विवर्तरूप जगत् से विरहित नित्य स्फुरणरूप आत्मदेव चित्स्वरूप द्रष्टा साक्षी है।। दृश्यसारूप्यविनिर्मुक्त चिद्रूप पूर्णज्योतिःस्वरूप सर्वसंवेद्यविरहित मैं केवल संवित्स्वरूप महान् हूँ। सर्वसङ्कल्पशून्य सर्वैषणा - विनिर्मुक्त निर्विकल्पपदको प्राप्तकर हे मुनीश्वर, स्वस्थ रहो।।''

स्वयं श्रीभगवत्पाद शङ्कराचार्य - महाभागके शब्दोंमें इस तथ्यका प्रकाश इस प्रकार है। -

''चित्तं चिदिति जानीयात्तकाररहितं यदा।।
तकारो विषयाध्यासो जपारागो यथा मणौ।''
(सदाचारानुसन्धानम् ३१,३१.१/२२)

''.'चित्त' को चित्स्वरूप समझना चाहिए, जब वह तकार - रहित हो। तकार विषयाध्यास है। उसीके योगसे चित्स्वरूप आत्मदेव चित्तरूपसे स्फुरित होता है। जैसे कि जपाकुसुमनिष्ठ लालिमाके योगसे स्वच्छ स्फटिककी रक्त स्फटिकरूपसे प्रतीति होती है।। ''

''अपि ह्ययमिहैवान्यैः प्राक्कृतैर्दुःखितो भवेत्।
सुखितो दुःखितो वापि दृश्यादृश्यविनिर्णयः।।''
(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व २१८.३७)

''एक विज्ञानसे उत्पन्न दूसरा विज्ञान फल भोगता है, ऐसा

मानना भी युक्त नहीं। क्योंकि ऐसा माननेपर इस जगत् में यह देवदत्त नामक पुरुष यज्ञदत्तादिके किये हुए अशुभ कर्मोंसे दु:खी और परकृत शुभ कर्मोंसे सुखी हो सकता है। ऐसी स्थितिमें दृश्य और अदृश्यका निर्णय भी यही होगा कि जो पूर्व क्षणमें दृश्य था, वह वर्तमान क्षणमें अदृश्य होगया तथा जो पूर्व क्षणमें अदृश्य था, वही वर्तमान क्षणमें दृश्य हो गया।।"

"तथा हि मुसलैर्हन्युः शरीरं तत्पुनर्भवेत्।
पृथग्ज्ञानं यदन्यच्च येनैतन्नोपपद्यते।। "
(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व २१८.३८)

"यदि कहें, देवदत्तके ज्ञानसे यज्ञदत्तका ज्ञान पृथक् एवं विजातीय है, सजातीय विज्ञानधारामें ही कर्म और उसके फलका भोग प्राप्त होता है; अत: देवदतके किये हुए कर्मका भोग यज्ञदत्तको नहीं प्राप्त हो सकता। अत एव पूर्वोक्त दोषारोपण सम्भव नहीं है। तब प्रश्न उठता है कि आपके मतमें जो यह सादृश्य या सजातीय विज्ञान उत्पन्न होता है, उसका उपादान क्या है? पूर्व क्षणवर्ती विनष्ट विज्ञानको ही उपादान मानना युक्त नहीं। यदि पूर्व क्षणवर्ती विज्ञानका विनाश ही उत्तरक्षणवर्ती सजातीय विज्ञानकी समुत्पत्तिमें कारण है, तब तो यदि कुछ लोग किसीके शरीरको मुसलोंसे मार डालें, तो उस मरे हुए शरीरसे भी अन्य शरीरकी पुन: उत्पत्ति हो सकती है।।"

"वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।।
(श्रीमद्भागवत १.२.११)

"तत्त्ववेत्ता उसे तत्त्व कहते हैं, जो आश्रयरूप ज्ञाता और विषयरूप ज्ञेयके भेदसे रहित अद्वय ज्ञान है। वही ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् कहा जाता है।।"

वेदान्तवेद्य स्वप्रकाश विज्ञान बौद्धचित्तवत् उत्पन्न क्षणिक नहीं, अपितु अनुत्पन्न नित्य है। वह परमाण्वादिके तुल्य अनादि, अनन्त और नित्य है, किन्तु परिच्छिन्न, प्रकाश्य और अनेक नहीं। विभु स्वप्रकाश अद्वय विज्ञान बुद्ध्यादिका विषय नहीं।

परस्परसापेक्ष भी एकके अपलापसे निरपेक्ष मान्य है। यथा कार्यात्मक घटके अपलापसे कारणात्मिका मृत्तिकाकी कारणसंज्ञामात्रका अपलाप होता है, न कि मृत्तिकाका। बीज - वृक्षकी परस्परसापेक्ष कार्यकारणताका अपलाप होनेपर भी आश्रयरूप मृत्तिका तथा गन्धतन्मात्राका अपलाप नहीं होता।

क्रियाके द्वारा करणका, करणके द्वारा उसके प्रयोक्ता कर्त्ताका अनुमान होता है। अतएव क्रिया, करण, कर्त्ता - परस्पर सापेक्ष हैं। अत: वास्तव सत्य नहीं है। तथापि क्रिया और करण-निरपेक्ष कर्त्तृसंज्ञारहित क्रिया, करण, कर्तृ - संज्ञक त्रिपुटीसे अतीत वस्तु वास्तव सत्य अवश्य है। यथा रूप, नेत्र और सूर्य - निरपेक्ष तेज अवश्य है।

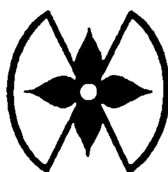
सविशेषकी निर्विशेषभावापत्ति सविशेषकी असत्ताका अख्यापक एवम् वास्तव स्वरूपका उपोद्बलक होता है। यथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध - संज्ञक पाँच गुण - सम्पन्न पृथ्वीकी गन्धगुणरहित जलभावापत्ति पृथ्वीकी असत्ताका अख्यापक और उसके वास्तव स्वरूप जलका ख्यापक है। यथा शब्द, स्पर्श,

रूप, और रस - संज्ञक चार गुण - सम्पन्न जलकी रसगुणरहित तेजोभावापत्ति जलकी असत्ताका अख्यापक और उसके वास्तव स्वरूप तेजका ख्यापक है। यथा शब्द, स्पर्श और रूप - संज्ञक तीन गुण - सम्पन्न तेजकी रूपगुणरहित वायुभावापत्ति तेजकी असत्ताका अख्यापक और तेजके वास्तव स्वरूपका ख्यापक है। यथा शब्द और स्पर्श - संज्ञक दो गुण - सम्पन्न वायुकी स्पर्शगुणरहित आकाशभावापत्ति वायुकी असत्ताका अख्यापक और उसके वास्तव स्वरूपका ख्यापक है। यथा शब्द - संज्ञक एक गुण - सम्पन्न आकाशकी शब्दगुणरहित अव्यक्तभावापत्ति आकाशकी असत्ताका अख्यापक और उसके वास्तव स्वरूप अव्यक्तका ख्यापक है। यथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध - संज्ञक पञ्च गुणोंकी बीजावस्थासम्पन्न अव्यक्तकी सर्वगुणरहित ब्रह्मभावापत्ति अव्यक्तकी असत्ताका अख्यापक और उसके वास्तव स्वरूप ब्रह्मका ख्यापक है।

निर्विशेषकी सविशेषभावापत्ति निर्विशेषके विकारित्व या परिणामित्वका अख्यापक है तथा विवर्तका पोषक। यथा शीतलता तथा सरसता - शून्य मरुकी जलभावापत्ति मरुके विकारित्व या परिणामित्वका अख्यापक है तथा विवर्तका पोषक।

विवर्तगर्भित परिणाम विवर्त ही मान्य है, न कि परिणाम। यथा स्वप्नगत विवर्तरूप दुग्धसे निर्मित स्वप्नगत दधि विवर्त ही मान्य है, न कि परिणाम।





९.कारुण्यसाम्य

बौद्धागमके अनुसार बोधिचित्त (प्रबुद्ध) महानुभाव महात्मदृष्टिसम्पन्न होते हैं। वे सब सत्त्वोंमें सदा ही आत्ममय चित्तताके कारण स्वसन्तानज दु:खोंके बिना भी सब प्राणियोंके दु:खसे दु:खी होते हैं। वे सर्वकल्याणकी भावनासे सबके हित और सुखसम्पादनमें संलग्न रहते हैं।-

''संस्कारमात्रं जगदेत्य बुद्ध्या निरात्मकं दु:खविरूढिमात्रम्।
विहाय यानर्थमयात्मदृष्टिः महात्मदृष्टिं श्रयते महार्थाम्।।"
(महायानसूत्रालङ्कार १४.३७)

एकात्मदर्शनके अमोघ प्रभावसे भेदबुद्धि-विनिर्मुक्त वेदार्थवित् आत्माको सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म समझते हैं। वे स्वयंको सद्रूप जानते हैं, अतएव बाह्य-विषयसापेक्ष आरामके पक्षधर नहीं होते, अन्त: आराम होते हैं। वे स्वयंको चिद्रूप जानते हैं, अत: बाह्य विषय-सापेक्ष बोधके पक्षधर नहीं होते, अन्तर्ज्योति होते हैं। वे स्वयंको आनन्दस्वरूप समझते हैं, अतएव बाह्य विषयसापेक्ष सुखके पक्षधर नहीं होते, वे अन्त:सुख होते हैं। ऐसे ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मनिर्वाण लाभ करते हैं। -

''योऽन्त:सुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव च।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति।।"
(श्रीमद्भगवद्गीता ५.२४)

९. कारुण्यसाम्य

निर्मल, निश्चल, संयत, संशयविपर्यय- विनिर्मुक्त, सर्वभूतोंके हितमें रत सम्यग्दर्शी समदर्शी सन्यासी ब्रह्मनिर्वाण लाभ करते हैं। -

"लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः।।"
(श्रीमद्भगवद्गीता ५.२५)

"सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।।"
(श्रीमद्भगवद्गीता १२.४)

वह योगी परम उत्कृष्ट है, 'जो स्वयंके तुल्य ही सबको सुख अनुकूल तथा दुःख प्रतिकूल है', इस भावसे समन्वित सर्वात्मभावभूषित है। जिसे अंन्य कहे जानेवाले मनुष्यों तथा स्थावर - जङ्गम प्राणियोंकी भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, वेदना व्यापती है, उसका अन्तर्यामित्व उद्बुद्ध होता है। जिसका अन्तर्यामित्व उद्बुद्ध होता है, उसके भवबन्धका अन्त होता है। -

"आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।।"
(श्रीमद्भगवद्गीता ६.३२)

जो किसी भी प्राणीसे द्वेष नहीं करता, सबके प्रति मित्रतुल्य वर्ताव करता है। जो ममता और अहङ्काररहित, सुख तथा दुःखमें समचित्त, क्षमाशील और करुण, सदा सन्तुष्ट, योगी, संयत, दृढनिश्चय है, जिसके मन और जिसकी बुद्धि श्रीहरिके प्रति समर्पित हैं, वह भगवद्भक्त श्रीहरिको प्रिय है। -

"अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी।।

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।। ''
(श्रीमद्भगवद्गीता १२. १३, १४)

सनातनधर्मकी निम्नलिखित आचार - संहिताके अनुपालनसे सर्वहित सुनिश्चित है। -

''सर्वसाम्यमनायासं सत्यवाक्यं च भारत ।
निर्वेदश्चाविधित्सा च यस्य स्यात् स सुखी नरः ।।
एतान्येव पदान्याहुः पञ्च वृद्धाः प्रशान्तये ।
एष स्वर्गश्च धर्मश्च सुखं चानुत्तमं मतम् ।।''
(महाभारत - शान्तिपर्व १७७.२,३)

''भारत ! सबमें समताका भाव, व्यर्थ परिश्रमका अभाव, सत्यभाषण, संसारसे वैराग्य और कर्मासक्तिका अभाव - ये पाँचों जिस मनुष्यमें होते हैं, वह सुखी होता है ।''

''ज्ञानवृद्ध पुरुष इन्हीं पाँच वस्तुओंको शान्तिका कारण बताते हैं । यही स्वर्ग है, यही धर्म है और यही परम उत्तम सुख माना गया है ।''

दमः क्षमा धृतिस्तेजः सन्तोषः सत्यवादिता ।
ह्रीरहिंसाऽव्यसनिता दाक्ष्यं चेति सुखावहाः।।
(महाभारत शान्तिपर्व २९०.२०)

''इन्द्रियसंयम, क्षमा, धैर्य, तेज, सन्तोष, सत्यवादिता, लज्जा, अहिंसा, दुर्व्यसनका त्याग तथा दक्षता - ये सब सुखप्रद हैं।''

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातन :।।
(महाभारतशान्तिपर्व १६२.२१)

९. कारुण्यसाम्य

"मन, वाणी और कर्मद्वारा सर्वप्राणियों के साथ कभी द्रोह न करना तथा दया और दान - यह श्रेष्ठ पुरुषों का सनातन धर्म है।।"

"यदन्यैर्विहितं नेच्छेदात्मनः कर्म पूरुषः।
न तत् परेषु कुर्वीत जानन्नप्रियमात्मनः।।
(महाभारत - शान्तिपर्व २५९.२०)

"मनुष्य दूसरों द्वारा किये हुए जिस व्यवहारको अपने लिये वाञ्छनीय नहीं मानता, दूसरोंके प्रति भी वह वैसा न करे । उसे यह जानना चाहिये कि जो हिंसा, असत्य, चौर्य, व्यभिचार आदि वर्ताव अपने लिये अप्रिय है, वह दूसरोंके लिये भी प्रिय नहीं हो सकता ।"

परेषां यदसूयेत न तत् कुर्यात् स्वयं नरः ।
यो ह्यसूयुस्तथायुक्तः सोऽवहासं नियच्छति ।।
(महाभारत - शान्तिपर्व २९०.२४)

"मनुष्य दूसरेके जिस कर्मकी निन्दा करे, उसको स्वयं भी न करे । जो दूसरेकी निन्दा तो करता है, किन्तु स्वयं उसी निन्द्य कर्ममें संलग्न रहता है, वह उपहासका पात्र होता है ।"

यदन्येषां हितं न स्यादात्मनः कर्म पौरुषम् ।
अपत्रपेत वा येन न तत् कुर्यात् कथञ्चन ।।
(महाभारत– शान्तिपर्व १२४.६७)

"अपना जो पौरुष और कर्म अन्योंके लिये हितकर न हो अथवा जिसे करनेमें सङ्कोचका अनुभव होता हो, उसे किसी तरह न करना चाहिये ।"

९. कारुण्यसाम्य

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैतत्प्रधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।।
(पद्मपुराण, सृष्टि. १९.३५५, विष्णुधर्मोत्तर. ३.२५३.४४)

"धर्मका सार सुनें और सुनकर इसे धारण करें । दूसरोंके द्वारा किये हुए जिस बर्तावको अपने लिये नहीं चाहते, उसे दूसरोंके प्रति भी नहीं करना चाहिये ।"

मनसोऽप्रतिकूलानि प्रेत्य चेह च वाञ्छसि।
भूतानां प्रतिकूलेभ्यो निवर्तस्व यतेन्द्रियः।।
(महाभारत - शान्तिपर्व ३०९. ५)

"यदि तुम लोक और परलोकमें अपने मनके अनुकूल पदार्थोंको प्राप्त करना चाहो तो अपनी इन्द्रियोंको संयत रखकर समस्त प्राणियोंके प्रतिकूल आचरणोंसे सुदूर रहो।।"

"अग्निरात्मा च माता च पिता जनयिता तथा।
गुरुश्च नरशार्दूल परिचर्या यथातथम्।।"
(महाभारत - शान्तिपर्व २९२.२२)

"पुरुषसिंह! अग्नि, आत्मा, माता, जन्म देनेवाले पिता तथा गुरु - इन सबकी यथा योग्य सेवा करनी चाहिये।।"

सर्व प्राणियोंके प्रति करुणाका प्रतिबन्धक राग, द्वेष और उपेक्षा है । सुख और सुखदके प्रति राग, दुःख और दुःखदके प्रति द्वेष, अतिरिक्तके प्रति उदासीनतामूलक उपेक्षा सम्भव है। जब सुख और दुःखका परम कारण अपना मन ही है ; न कि जन, देवता, आत्मा, ग्रह, कर्म, काल, देशादि कोई अन्य,– ऐसा बोध

सुस्थिर हो जाता है और सर्वरूपोंमें भगवत्तत्त्वकी भावना सुस्थिर हो जाती है अथवा आत्मतुल्य अन्योंके प्रति व्यवहारकी भावनाका उदय हो जाता है, तब सबके प्रति करुणाका उदय सुनिश्चित तथा सुस्थिर होता है।

जिस प्रकार स्वप्नमें मनोगत योग्यताका अतिक्रमणकर किसी दृश्यका दर्शन सम्भव नहीं, उसी प्रकार जागर - जगत् में भी मनोगत योग्यताकी सीमामें ही दृश्यस्फुरण सम्भव है, इस रहस्यके बोधसे दृश्यकी सहिष्णुता सम्भव है। दृश्यदासतासे विनिर्मुक्त व्यक्ति करुण होता है।

मन जब प्रसुप्त होता है; तब जन, देवता, आत्मा, ग्रह, कर्म, काल, देशादि किसी भी हेतुसे द्वन्द्वात्मक सुख - दु:खकी समुपलब्धि सम्भव नहीं, अत: मन ही सुख - दु:खकी समुपलब्धिमें परम कारण है। अविक्रिय विज्ञानघन निर्विशेष निरवयव असङ्ग आत्मामें कल्पित मनोयोगसे ही कर्तृत्व - भोक्तृत्वादिकी समुपलब्धि सम्भव है। ग्राह्य - ग्राहक, पोष्य - पोषक, शोष्य - शोषक -भाव साजात्यमें होता है, वैजात्यमें नहीं। अत: जन, देवतादिकृत सुख - दु:खादि प्रकल्पोंकी गति भी देह, इन्द्रिय, अन्त:करण तथा देवादि तक ही सम्भव है, न कि आत्मा तक। कर्म, भोग, कर्तृत्व, भोक्तृत्वादिकी सिद्धि चिज्जडग्रन्थिमूलक आध्यासिक ही है, न कि वास्तविक। अत: मन:समाधान ही कर्त्तव्य है। व्यवहारदशामें कारुण्य ही कल्याण - कल्पतरु है।-

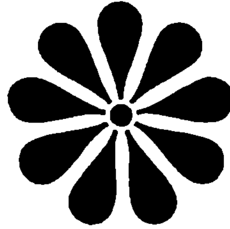
“नायं जनो मे सुखदु:खहेतु-
र्न देवताऽऽत्माग्रहकर्मकाला:।

मनः परं कारणमामनन्ति
संसारचक्रं परिवर्तयेद् यत्।।''
(श्रीमद्भागवत ११.२३.४३)

दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च
श्रुतं च कर्माणि च सद्व्रतानि।
सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः
परो हि योगो मनसः समाधिः।।
(श्रीमद्भागवत ११.२३.४६)

राजा शिविके शब्दोंमें - ''मैं राज्यको नहीं चाहता, न स्वर्ग ही चाहता हूँ, न अपुनर्भवरूप मोक्ष ही चाहता हूँ; चाहता हूँ तो केवल इतना ही कि दुःखसन्तप्त प्राणियोंके क्लेशोंका नाश हो।।''-

''न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।।''





प्रार्थना

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदताम्
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी।। २।।

(श्रीमद्भागवत ५. १८.९)

"हे प्रभो ! विश्वका कल्याण हो। दुष्ट दुष्टतासे विनिर्मुक्त होकर प्रमुदित हो। सब एक-दूसरेका हित चिन्तन करें। हमारा मन शुभमार्गमें प्रवृत्त हो तथा हमारी बुद्धि निष्कामभावसे स्वप्रकाश सदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीहरिमें निमग्न हो।।"



श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य
ऋग्वेदीय पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठ
शङ्कराचार्यमार्ग, पुरी, ७५२००१ (ओडिशा)
भारत



श्रीहरि:

श्रीगणेशाय नम:

पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठ -

स्वस्तिप्रकाशनसंस्थानसे प्रकाशित पुस्तकें

१.शुकसुधा
२.श्वेताश्वतरोपनिषत् अध्याय १-३ (व्याख्यासहित)
३.श्वेताश्वतरोपनिषत् अध्याय ३-६ (व्याख्यासहित)
४.नासदीयसूक्तम् (सायणभाष्यानुवादसहित)
५.कुन्तीस्तुति:(विस्तृत व्याख्यासहित)
६श्रीराधारस और रसिकशेखर
७श्रीराधारससुधा और श्रीकृष्णरसवैभव
८.पीठपरिषद् और उसके अन्तर्गत आदित्यवाहिनी और आनन्दवाहिनी
९.सुखमयजीवनका सनातनसिद्धान्त
१०.विश्वशान्तिका सनातनसिद्धान्त
११.स्वस्तिकगणित
१२.सार्वभौमसनातनसिद्धान्त
१३.सारार्थदीपिका
१४.शारीरकस्वाराज्यसिद्धिसारसमाख्या

बौद्धसिद्धान्त और वेदान्त
स्वस्तिप्रकाशन

१५.सनातनधर्मियोंका रसरहस्यमय बहुदेवादिवाद
१६.जीवनज्योति
१७.शिवावतार भगवत्पाद आदि शङ्कराचार्य
१८.गीताजयन्ती और भीष्मोत्क्रान्ति
१९.अनमोलवचन
२०.नीति और अध्यात्म
२१.नीतिसूक्तम्
२२.आयुर्विज्ञान
२३.अध्यात्मरहस्य
२४.श्रीमद्भगवद्गीतामें योगचतुष्टय
२५.सनातनसन्देश
२६.व्रतस्वरूपविमर्श
२७.बालजागरण
२८.श्रीमद्भगवद्गीतामें कर्मतत्त्व
२९.श्रीमद्भगवद्गीतामें पुरुषार्थ चतुष्टय
३०.नीतिचालीसा
३१.श्रीजगन्नाथ और उनकी रथयात्रा
३२.व्यूहरचना
३३.अङ्कपदीयम्
३४.गणितदर्शन
३५.पावनसन्देश
३६.दिग्दर्शन
३७.राष्ट्ररक्षा
३८.परमार्थसार
३९.ब्रह्मज्ञानावलीमाला
४०.करुणा, कठोरता और कर्त्तव्यनिष्ठा

स्वस्तिप्रकाशन

41.The Eternal Principles Of Happy Life
४२.श्रीमद्भगवद्गीतामें ज्ञानतत्त्व
४३.क्रान्तिबिन्दु
४४.दिव्यानुभूति (प्रथम भाग)
४५.अवतारमीमांसा
४६.विचित्र सम्वाद
४७.वैदिकार्षगणित (प्रथम भाग)
४८.प्रवचनपीयूष
49. Ethics and Spirituality
५०.नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम्
५१.गणितचिन्तामणि
५२.चतुराम्नाय - चतुष्पीठ
53.The Philosophy of Mathematics
54.Swastik - Ganita
55.Nature of Numbers
56..Bhagawan Shree Krisna
५७.श्रीगीतासुधा
५८.श्रीराधासुधा
५९.जगदीश्वर, जीव और जगत्
६०.भागवतसुधा ❁
६१.श्रीजगन्नाथाष्टकम् ❁
६२.श्रीसागर - गङ्गा - आरती
६३.वैदिकार्षगणित (द्वितीय भाग) ❁
६४.भगवान् श्रीकृष्ण (हिन्दी अनुवाद)
६५.वैदिक बौद्धदर्शन (वैदिकार्षप्रक्रियाप्रकाश) ❁
६६.शून्यैकसिद्धि और द्व्यङ्कपद्धति

Website:- www. Govaradhan - Peetham.

❁ सन् २०११ (वि.स. २०६८) में सम्भावित

